23 जून :

डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी

बलिदान दिवस

Dr. Syama Prasad Mookerjee Research Foundation

(जीवन घटनाक्रम)

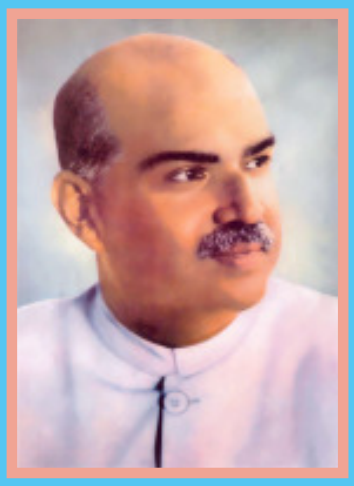

१९०१	:	श्यामा प्रसाद मुखर्जी का जन्म हुआ
१९२१	:	कलकत्ता विश्वविद्यालय से अंग्रेजी विषय में स्नातक
१९२३	:	कलकत्ता विश्वविद्यालय से बांग्ला विषय में स्नातकोत्तर
१९२३	:	कलकत्ता विश्वविद्यालय के सीनेट का फैलो मनोनित
१९२४	:	लॉ की डिग्री हासिल की
१९२४	:	कलकत्ता हाई कोर्ट में वकालत की शुरुआत
१९२४	:	उनके पिता आशुतोष मुखर्जी का देहांत
१९२६	:	पढ़ाई के लिए इंग्लैंड चले गए
१९२७	:	इंग्लैंड से बैरिस्टर बनकर वापस लौटे
१९३४	:	कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति बने
१९३८	:	कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति का कार्यकाल समाप्त हो गया
१९४१-४२	:	बंगाल प्रदेश में वित्त मंत्री
१९४४	:	हिन्दू महासभा का अध्यक्ष बने
१९४६	:	बंगाल विभाजन का समर्थन किया
१९४७	:	केन्द्रीय मंत्रिमंडल में शामिल हुए
१९५०	:	८ अप्रैल को मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया
१९५१	:	२१ अक्टूबर को भारतीय जनसंघ की स्थापना की
१९५३	:	११ मई जो जम्मू कश्मीर में प्रवेश करने पर गिरफ्तार कर लिया गया
१९५३	:	२३ जून को रहस्यमयी परिस्थितियों में मौत

23 जून :

डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी बलिदान दिवस

संकलनकर्ता

शिवानन्द द्विवेदी

Cover Design & Layout

Vikas Saini

डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी

रिसर्च फाउंडेशन

अनुक्रमणिका

क्र.सं	लेख	पेज न.
01	प्राक्कथन	4
02	डॉ. मुकर्जी का जीवन परिचय	6
03	इतिहास दृष्टि : डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी **– डॉ. सतीशचन्द्र मित्तल**	9
04	अखंड भारत के पुरोधा डॉ मुखर्जी **– डॉ. महेश चन्द्र शर्मा**	14
05	इतिहास के पदचिन्ह : श्यामा प्रसाद मुखर्जी की शहादत **– कुलदीप चन्द्र अग्निहोत्री**	17
06	डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी : एक दूरदर्शी राजनीतिक चिंतक **– रविशंकर त्रिपाठी**	24
07	डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी : एक प्रखर राष्ट्रवादी **– संजीव कुमार सिन्हा**	27
08	डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी : अखंड भारत के स्वप्न द्रष्टा **– शैलेन्द्र कुमार शुक्ला**	29
09	प्रजा परिषद आन्दोलन के साठ साल बाद और डॉ. मुखर्जी की शहादत	32
10	THE MAN AND HIS CONVICTION **– Dr. Anirban Ganguly**	36
11	Why Syama Prasad Mookerjee Is Relevant Today **– Dr. Anirban Ganguly**	39
12	Dr. Syama Prasad Mookerjee: a heartfelt tribute	43

प्राक्कथन

सन १९४७ में मिली स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय राजनीति में एकतरफ जहाँ कांग्रेस का एकछत्र साम्राज्य हुआ करता था और विरोधी विचारधाराओं का विस्तार बहुत सीमिति था, ऐसे में भारत को आवश्यकता थी एक ऐसी वैचारिक सोच की जो भारतीयता की मूल अवधारणा की बात करे। उस दौरान देश को आवश्यकता थी एक ऐसे राजनीतिक चिन्तन की जो वर्षों से गुलामी में जकड़े भारतवर्ष के आम जनमानस के मन में राष्ट्रीयता की भावना को प्रेरित कर सके। उस दौर में भारतीय राजनीति को जरुरत थी एक ऐसे दूरदृष्टा राजनेता एवं चिन्तक की जो भविष्य के भारत को समझ सके। डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी ऐसे ही राजनीतिक चिन्तक एवं दृष्टा थे। गांधी जी एवं सरदार पटेल के कहने पर बेशक वे नेहरु मंत्रिमंडल में शामिल हुए लेकिन वैचारिक विरोध की वजह से वे अधिक दिनों तक सरकार में नहीं रहे और इस्तीफा देकर 'भारतीय जनसंघ' स्थापना की। भारतीय जनसंघ को प्रथम लोकसभा चुनाव में महज २ सीटें मिलीं थी, लेकिन राष्ट्रवाद की मजबूत बुनियाद डॉ. मुखर्जी ने रख दी थी। डॉ. मुखर्जी भारतीय आम जनमानस की बारीक समझ रखते थे। वे जानते थे कि इस देश के मानस पटल पर राष्ट्र की सांस्कृतिक विरासतों के प्रति अगाध प्रेम है, लेकिन उसे एक राजनीतिक मंच दिए जाने की जरुरत है। उनकी यह सोच कितनी सार्थक थी, आज यह एक प्रमाणित तथ्य बन चुकी है। डॉ. मुखर्जी जिस राष्ट्रवाद की राजनीतिक विचारधारा की हिमायत किये वो इस देश की राजनीति के केंद्र में है। उस विचारधारा को धरोहर के रूप में लेकर चलने वाला राजनीतिक दल वर्तमान में देश का ही नहीं बल्कि दुनिया का सबसे बड़ा राजनीतिक दल बन चुका है। डॉ. मुखर्जी अखंड भारत की अवधारणा में न सिर्फ आस्था रखते थे बल्कि उन्होंने इसके लिए वे हर स्तर के संघर्ष पथ को स्वीकार भी किया। जम्मू-काश्मीर को लेकर नेहरु की नीतियों का न सिर्फ उन्होंने विरोध किया बल्कि 'एक देश में दो निशान, दो विधान, दो प्रधान नहीं चलेंगे' का नारा लेकर काश्मीर में बिना परमिट प्रवेश के लिए निकल पड़े। हालांकि देश की अखंडता एवं अपने संकल्प को लेकर दृढ प्रतिज्ञ डॉ. मुखर्जी काश्मीर में बिना परमिट प्रवेश तो किये लेकिन उन्हें हिरासत में लेकर नजरबंद कर दिया गया। नजरबंदी के कुछ ही दिनों बाद २३ जून १९५३ को उनके देहांत की खबर आई। यह खबर पूरे देश को स्तब्ध कर देने वाली थी, लेकिन नेहरु स्तब्ध न हुए! डॉ. मुखर्जी की नजरबंदी के दौरान हुई उनकी रहस्मयी मौत ने तत्कालीन सरकारों पर बड़े सवाल खड़े किये, जो आज भी अनुत्तरित हैं। इस संबंध में डॉ. मुखर्जी की माँ जोगमाया देवी ने तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरु को कई पत्र लिखा लेकिन उन्हें नेहरु की तरफ से कोई संतुष्टिपरक जवाब नहीं मिला।

२३ जून की यह तारीख भारतीय लोकतंत्र में आस्था रखने वाले एक राष्ट्रप्रेमी एवं राष्ट्रभक्त की क्षति के रूप में याद की जाती है। अगर तत्कालीन राजनीतिक कुचक्रों का शिकार डॉ. मुखर्जी को न बनाया गया होता तो आज देश की राजनीतिक धारा कुछ और होती। खैर जिस बुनियाद को डॉ. मुखर्जी ने रखा वो बुनियाद अब विशाल वट-वृक्ष बन चुकी है, क्योंकि वो बुनियाद इस देश के आम जन के स्वाभाविक सोच पर आधारित थी।

आज हम महान युगदृष्टा डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी को नमन करते हैं, श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं!!

शिवानन्द द्विवेदी
रिसर्च फेलो,
डॉ श्यामा प्रसाद मुकर्जी रिसर्च फाउंडेशन

डॉ. मुकर्जी का जीवन परिचय

जन्मः ०६ जुलाई १९०१, कलकत्ता, बंगाल, ब्रिटिश भारत

देहांतः २३ जून १९५३, श्रीनगर के नजदीक निशांतबाग में नजरबंदी के दौरान, स्वतन्त्र भारत

कार्यः शिक्षाविद, चिन्तक, राजनेता

प्रारंभिक जीवन

डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी का जन्म ६ जुलाई १९०१ को कलकत्ता के एक अत्यन्त प्रतिष्ठित परिवार में हुआ। उनके पिता सर आशुतोष मुखर्जी एक शिक्षाविद् के रूप में विख्यात थे। उनकी माता का नाम जोगमाया देबी था। उमा प्रसाद मुखोपाध्याय उनके छोटे भाई थे। उन्होंने सन १९१७ में मैट्रिक किया तथा १९२१ में बी०ए० की परीक्षा प्रथम स्थान के साथ उत्तीर्ण की। इसके बाद उन्होंने बंगाली विषय में एम.ए. भी प्रथम स्थान के साथ उत्तीर्ण किया और सन १९२४ में कानून की भी पढ़ाई पूरी की। इस प्रकार उन्होंने अल्पायु में ही विद्याध्ययन के क्षेत्र में उल्लेखनीय सफलताएँ अर्जित कीं, और शीघ्र ही उनकी ख्याति एक शिक्षाविद् और लोकप्रिय प्रशासक के रूप में फैल गई। सन १९२४ में पिता की मृत्यु के बाद उन्होंने कलकत्ता हाई कोर्ट में वकालत के लिए पंजीकरण कराया। सन १९२६ में वो इंग्लैंड चले गए और १९२७ में बैरिस्टर बन कर वापस भारत आ गए। सन १९३४ में कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति बनने वाले वे सबसे कम उम्र के व्यक्ति थे। डॉ मुखर्जी इस पद पर सन १९३८ तक बने रहे। सन १९३७ में उन्होंने गुरु रविंद्रनाथ टैगोर को कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में भाषण के लिए आमंत्रित किया। कलकत्ता विश्वविद्यालय के इतिहास में यह पहला अवसर था जब किसी ने दीक्षांत समारोह का भाषण बांग्ला में दिया हो।

राजनैतिक जीवन

डॉ मुखर्जी के राजनैतिक जीवन की शुरुआत सन १९२९ में हुई जब उन्होंने कांग्रेस पार्टी के टिकट पर बंगाल विधान परिषद् में प्रवेश किया परन्तु जब कांग्रेस ने विधान परिषद् के बहिस्कार का निर्णय लिया तब उन्होंने इस्तीफा दे दिया। इसके पश्चात उन्होंने स्वतंत्र उम्मीदवार के तौर पर चुनाव लड़ा और चुने गए। सन १९४१-४२ में वह बंगाल राज्य के वित्त मंत्री रहे। सन १९३७ से १९४१ के बीच जब कृषक प्रजा पार्टी और मुस्लिम लीग की साझा सरकार थी तब वो विपक्ष के नेता थे और जब फजलुल हक के नेतृत्व में एक प्रगतिशील सरकार बनी तब उन्होंने वित्त मंत्री के तौर पर कार्य किया पर १ साल बाद ही इस्तीफा दे दिया। इसके बाद धीरे-धीरे वो हिन्दुओं के हित की बात करने लगे और हिन्दू महासभा में शामिल हो गए। सन १९४४ में वो हिन्दू महासभा के अध्यक्ष भी रहे।

डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने मुहम्मद अली जिन्ना और मुस्लिम लीग की साम्प्रदायिकतावादी

राजनीति का विरोध किया था। उस समय जिन्ना मुसलमानों के लिए बहुत ज्यादा रियायत की मांग कर रहे थे और पाकिस्तान आन्दोलन को भी हवा दे रहे थे। उन्होंने मुस्लिम लीग के साम्प्रदायिकतावादी दुष्प्रचार से हिन्दुओं की रक्षा के लिए कार्य किया और मुस्लिम तुष्टिकरण की नीति का विरोध किया।

डॉ. मुखर्जी धर्म के आधार पर विभाजन के कट्टर विरोधी थे। उनके अनुसार विभाजन सम्बन्धी परिस्थिति ऐतिहासिक और सामाजिक कारणों से उत्पन्न हुई थी। वो यह भी मानते थे कि सत्य यह है कि हम सब एक हैं और हममें कोई अन्तर नहीं है। हम सब एक ही भाषा और संस्कृति के हैं और एक ही हमारी विरासत है। इस मान्यता के साथ आरम्भ में उन्होंने देश के विभाजन का विरोध किया था पर १९४६-४७ के दंगों के बाद उनके इस सोच में परिवर्तन आया। उन्होंने महसूस किया कि मुस्लिम लीग के सरकार में मुस्लिम बाहुल्य राज्य में हिन्दुओं का रहना असुरक्षित होगा। इसी कारण सन १९४६ में उन्होंने बंगाल विभाजन का समर्थन किया।

आजादी के बाद

स्वतंत्रता के बाद जब पंडित जवाहरलाल नेहरु के नेतृत्व में सरकार बनी तब डॉ श्यामा प्रसाद मुखर्जी गांधी जी और सरदार पटेल के कहने पर भारत के पहले मंत्रिमण्डल में शामिल हुए और उद्योग और आपूर्ति मंत्रालय की जिम्मेदारी संभाली। भारत के संविधान सभा और प्रान्तीय संसद के सदस्य और केन्द्रीय मन्त्री के तौर पर उन्होंने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया परन्तु उनके राष्ट्रवादी सोच के चलते कांग्रेस के अन्य नेताओं के साथ मतभेद बराबर बने रहे। अंततः सन १९५० में नेहरु-लियाकत समझौते के विरोध में उन्होंने ८ अप्रैल १९५० को मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया।

इसके बाद उन्होंने अक्टूबर, १९५१ में 'भारतीय जनसंघ' की स्थापना की। सन १९५२ के चुनाव में भारतीय जन संघ ने कुल तीन सीटें जीती, जिसमे एक उनकी खुद की सीट शामिल थी।

जम्मू कश्मीर और अनुच्छेद ३७०

डॉ. मुखर्जी जम्मू कश्मीर राज्य को एक अलग दर्जा दिए जाने के घोर विरोधी थे और चाहते थे कि जम्मू कश्मीर को भी भारत के अन्य राज्यों की तरह माना जाये। वो जम्मू कश्मीर के अलग झंडे, अलग निशान और अलग संविधान के विरोधी थे। उनको ये बात भी नागवार लगती थी कि वहाँ का मुख्यमन्त्री (वजीरे-आजम) अर्थात् प्रधानमन्त्री कहलाता था। उन्होंने देश की संसद में अनुच्छेद-३७० को समाप्त करने की जोरदार वकालत की।

अगस्त १९५२ में उन्होंने बिना परमिट लिए जम्मू कश्मीर में प्रवेश का एलान किया और इसे पूरा करने के लिये वे १९५३ में बिना परमिट के जम्मू कश्मीर की यात्रा पर निकल पड़े। वहाँ पहुँचते ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और २३ जून १९५३ को रहस्यमय परिस्थितियों में उनका देहांत हो गयी।

जनसंघ की स्थापना

ब्रिटिश सरकार की भारत विभाजन की गुप्त योजना और षडयंत्र को एक दलविशेष के नेताओं ने अखण्ड भारत संबंधी अपने वादों को ताक पर रखकर विभाजन स्वीकार कर लिया। तब डॉ मुकर्जी ने बंगाल और पंजाब के विभाजन की मांग उठाकर प्रस्तावित पाकिस्तान का विभाजन कराया और आधा बंगाल और आधा पंजाब खंडित भारत के लिए बचा लिया। गांधी जी और सरदार पटेल के अनुरोध पर वे खंडित भारत के पहले मंत्रिमण्डल में शामिल हुए, और उन्हें उद्योग जैसे महत्वपूर्ण विभाग की जिम्मेदारी सौंपी गई। संविधान सभा और प्रांतीय संसद के सदस्य और केंद्रीय मंत्री के नाते उन्होंने शीघ्र ही अपना विशिष्ट स्थान बना लिया। किन्तु उनके राष्ट्रवादी चिंतन के साथ-साथ अन्य नेताओं से मतभेद बने रहे। फलतः राष्ट्रीय हितों की प्रतिबद्धता को अपनी सर्वोच्च प्राथमिकता मानने के कारण उन्होंने मंत्रिमण्डल से त्यागपत्र दे दिया। उन्होंने प्रतिपक्ष के सदस्य के रूप में अपनी भूमिका निर्वहन को चुनौती के रूप में स्वीकार किया, और शीघ्र ही अन्य राष्ट्रवादी दलों और तत्वों को मिलाकर एक नई पार्टी बनाई जो कि विरोधी पक्ष में सबसे बडा दल था। उन्हें पं जवाहरलाल नेहरू का सशक्त विकल्प माने जाने लगा। अक्टूबर, १९५१ में भारतीय जनसंघ का उद्‌भव हुआ। जिसके संस्थापक अध्यक्ष, डॉ श्यामाप्रसाद मुकर्जी रहे।

संसद में

संसद में उन्होंने सदैव राष्ट्रीय एकता की स्थापना को प्रथम लक्ष्य रखा। संसद में दिए अपने भाषण में उन्होंने पुरजोर शब्दों में कहा था कि राष्ट्रीय एकता की शिला पर ही भविष्य की नींव रखी जा सकती है। देश के राष्ट्रीय जीवन में इन तत्वों को स्थान देकर ही एकता स्थापित करनी चाहिए। क्योंकि इस समय इनका बहुत महत्व है। इन्हें आत्म सम्मान तथा पारस्परिक सामंजस्य के साथ सजीव रखने की आवश्यकता है। है। डॉ मुकर्जी जम्मू काश्मीर को भारत का पूर्ण और अभिन्न अंग बनाना चाहते थे। उस समय जम्मू काश्मीर का अलग झंडा था, अलग संविधान था, वहाँ का मुख्यमंत्री प्रधानमंत्री कहलाता था। डॉ मुकर्जी ने जोरदार नारा बुलंद किया कि - एक देश में दो निशान, एक देश में दो प्रधान, एक देश में दो विधान नहीं चलेंगे, नहीं चलेंगें। संसद में अपने ऐतिहासिक भाषण में डॉ मुकर्जी ने धारा-३७० को समाप्त करने की भी जोरदार वकालत की थी। अगस्त १९५२ में जम्मू की विशाल रैली में उन्होंने अपना संकल्प व्यक्त किया था कि या तो मैं आपको भारतीय संविधान प्राप्त कराऊंगा या फिर इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपना जीवन बलिदान कर दूँगा। उन्होंने तात्कालिन नेहरू सरकार को चुनौती दी तथा अपनी दृढ़ निश्चय पर अटल रहे। अपने संकल्प को पूरा करने के लिए वे १९५३ में बिना परमिट लिए जम्मू काश्मीरकी यात्रा पर निकल पड़े। जहाँ उन्हें गिरफ्तार कर नजरबंद कर लिया गया। २३ जून, १९५३ को रहस्यमय परिस्थितियों में उनकी मृत्यु हो गई। वे भारत के लिए शहीद हो गए, और भारत ने एक ऐसा व्यक्तित्व खो दिया जो हिन्दुस्तान को नई दिशा दे सकता था।

इतिहास दृष्टिः डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी

✍ डॉ. सतीशचन्द्र मित्तल

डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी (१९०१-१९५३) राष्ट्रभक्ति एवं देश प्रेम की उस महान परंपरा के वाहक हैं जो देश की परतंत्रता के युग तथा स्वतंत्रता के काल में देश की एकता, अखण्डता तथा विघटनकारी शक्तियों के विरुद्ध सतत् जूझते रहे। उनका जीवन भारतीय धर्म तथा संस्कृति के लिए पूर्णतः समर्पित था। वे एक महान शिक्षाविद् तथा प्रखर राष्ट्रवादी थे।

पारिवारिक परिवेश

शिक्षा, संस्कृति तथा हिन्दुत्व के प्रति अनुराग उन्हें परिवार से मिला था। उनके पिता श्री आशुतोष मुखर्जी बंगाल के एक जाने माने विद्वान थे। वे कोलकाता के एक प्रमुख न्यायाधीश एवं कई बार कोलकाता विश्वविद्यालय के उपकुलपति रहे थे। उनकी माता जगतारिणी देवी एक सुशील, सुसंस्कारित तथा दृढ़ विचारों की महिला थीं। पिता स्वभाव से विदेशी शासकों तथा पाश्चात्य संस्कृति के विरोधी थे। वे किसी भी प्रकार के सरकारी दबाव को न मानते थे। उदाहरणतः भारत का साम्राज्यवादी तथा क्रूर वायसराय लार्ड कर्जन चाहता था कि श्री आशुतोष, इंग्लैण्ड जाकर एडवर्ड सप्तम के सम्राट बनने पर उनके राज्याभिषेक के अवसर पर उपस्थित रहें। इसके लिए कर्जन ने उनसे बार-बार कहा था। परंतु उनकी माता ने उन्हें जाने से मना कर दिया था। तब अहंकारी कर्जन ने श्री आशुतोष से कहा था, जाओ, अपनी माता से कहो कि वायसराय एवं गवर्नर जनरल का आदेश है कि वह अपने पुत्र को जाने के लिए कहे। आशुतोष ने इस पर तुरंत उत्तर दिया, मैं मां की ओर से भारत के वायसराय से कहना चाहूंगा कि उनकी मां चाहती है कि उनका पुत्र सिवाय मां के किसी अन्य के आदेश को अस्वीकार करता है, चाहे वह भारत का वायसराय हो या अन्य कोई बड़ा हो। (देखें डॉ. नभ कुमार अदक, श्यामा प्रसाद मखर्जी, ए स्टडी ऑफ हिज रोल इन बंगाल पॉलिटिक्स (१९२९-१९५३, पृ. ४) आशुतोष मुखर्जी ने बालक श्यामा प्रसाद में प्रारंभ से ही आदर्शोन्मुख यथार्थवादी दृष्टि, प्रखर राष्ट्रभक्ति तथा देशप्रेम के गुणों को सुनियोजित ढंग से विकसित किया था। अटूट आत्मविश्वास, दृढ़ता तथा निर्भीकता उन्हें माता-पिता से मिली थी। शिक्षा के क्षेत्र में वे मैट्रिक से उच्च शिक्षा तक हमेशा प्रथम श्रेणी में थे। वे शलिंकन्सश में पढ़ने इंग्लैण्ड भी गये थे। इसके साथ पत्र-पत्रिकाओं से उनकी रुचि थी। १९३४ ई. में केवल ३३ वर्ष की आयु में वे कोलकाता विश्वविद्यालय के उपकुलपति बन गये थे तथा १९३६ ई. में उन्हें डॉक्टर की उपाधि दी गई थी। शिक्षा उनका मुख्य क्षेत्र रहा।

प्रखर राष्ट्रवादी

डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी का १९२९ ई. से सार्वजनिक जीवन का प्रारंभ हुआ, जब वे पहली बार बंगाल विधान परिषद के सदस्य (एमएलसी) बने। वे १९३६ ई. तक इसके सदस्य

रहे। इस काल में उन्होंने देश की प्रत्यक्ष राजनीतिक गतिविधियों का गहराई से अध्ययन किया। यद्यपि इस काल में उनका मुख्य क्षेत्र शिक्षा संबंधी समस्याएं तथा विकास रहा तो भी उन्होंने अंग्रेज सरकार की क्रूर एवं दमनकारी नीतियों का कठोर भाषा में प्रतिरोध किया। उन्होंने परिषद में रहते हुए साइमन कमीशन तथा अन्य आंदोलनों में पकड़े हुए सत्याग्रहियों के प्रति सहानुभूति जताई तथा जेलों में दी जा रही यातनाओं का भंडाफोड़ किया। उदाहरणतः एक पूर्व संपादक सत्याग्रही को धोबी घाट पर लगाया गया था। अनेक पढ़े लिखों को तेल निकालने की मिल में लगाया गया था। वंदेमातरम् कहने पर सजा दी जाती थी, गांधी टोपी न हटाने पर सजा दी जाती, मरीजों को बिना दवा चिकित्सालय से भगा दिया जाता आदि –आदि (देखें बंगाल लेजिस्लेटिव कौंसिल कार्यवाही भाग ३५, दिनांक ११ अगस्त, १९३०, पृ. ७६) संक्षेप में उनके वक्तव्यों से जन समाज में अद्‌भुत जागृति आई तथा राष्ट्रीय आंदोलन को गति मिली।

डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी १९३७–१९४१ तक (१९३५ के अधिनियम के आधार पर) १९३७ में बंगाल से चुनकर आये थे। इस काल में उन्होंने भारत में होने वाली राजनीतिक गतिविधियों और सरकारी नीतियों के संबंध में खुलकर अपने वक्तव्य तथा सुझाव दिए। वे पहले ही कांग्रेस द्वारा कम्युनल अवार्ड स्वीकृत करने से क्षुब्ध थे। १९३९ ई. में वे वीर सावरकर के प्रभाव में आकर हिन्दू महासभा में सम्मिलित हो गये थे तथा शीघ्र ही उसके अखिल भारतीय सर्वोच्च नेता बन गये थे। वे बंगाल के प्रधानमंत्री फजलूल हक के साम्प्रदायिक मंत्रिमंडल द्वारा हिन्दुओं पर अमानुषिक अत्याचारों से परिचित थे (विस्तार के लिए देखें, उमा प्रसाद मुखोपाध्याय फ्रोम ए डायरी (ऑक्सफोर्ड १९९३) डॉ. मुखर्जी ने हिन्दू समाज के लिए सुरक्षा के बारे में खुलकर वकालत की। इन्हीं दिनों सुभाषचन्द्र बोस तथा गांधीजी में परस्पर टकराव हो रहा था। इतिहास की यह विस्मयकारी घटना है कि महात्मा गांधी की २६ फरवरी १९४० ई. को कोलकाता में डॉ. मुखर्जी से भेंट हुई तथा उन्होंने डॉ. मुखर्जी के हिन्दू महासभा में सम्मिलित होने पर अति प्रसन्नता व्यक्त की। गांधीजी उस समय नोआखली में मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं पर हो रहे अत्याचारों से दुरूखी थे। दोनों के बीच संक्षिप्त वार्तालाप उल्लेखनीय है। जब गांधीजी को डॉ. मुखर्जी के हिन्दू महासभा में जाने का समाचार मिला तो वे बोले, कोई तो मालवीय जी के बाद हिन्दुओं के नेतृत्व के लिए चाहिए था। इस पर मुखर्जी ने कहा, तब आप मुझे एक 'कम्युनल' की भांति देखें। गांधी जी बोले, समुद्र मंथन के पश्चात भगवान शिव ने विषपान किया था, किसी को भारतीय राजनीति का विषपान करना ही होगा। यह तुम ही हो सकते हो। वस्तुतः गांधी जी डॉ. मुखर्जी के उदार तथा राष्ट्रीय विचारों से अत्यधिक प्रभावित थे। जाते–जाते उन्होंने डॉ. मुखर्जी से पुनः कहा, पटेल एक हिन्दू मस्तिष्क का कांग्रेसी है, तुम एक कांग्रेस मस्तिष्क के हिन्दू सदृश होंगे (देखें, बलराज मधोक पोट्रेट ऑफ ए मार्टियरः बायोग्राफी ऑफ डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी (मुम्बई १९६९, पृ. २६) प्रायः राजनीतिक गतिविधियों पर डॉ. मुखर्जी का वक्तव्य सर्वप्रथम तथा बेबाक होता था, न वह दुविधापूर्ण होता था, न विवादास्पद। १९४१ की जनगणना के समय उन्होंने अनुसूचित जातियों को स्वयं को हिन्दू लिखवाने का आह्वान किया था। साथ ही सरकार द्वारा जानबूझकर जनगणना को प्रभावित करने की कटु आलोचना की थी। (देखें, उमा प्रसाद मुखोपाध्याय डायरी, पृ. ४६) २४

मार्च १९४० में मुस्लिम लीग के लाहौर अधिवेशन में पहली बार पारित पाकिस्तान के प्रस्ताव का सर्वप्रथम विरोध डॉ. मुखर्जी ने किया था तथा इसे प्रारंभ में ही दबाने की बात की थी। द्वितीय महायुद्ध के प्रारंभ के समय डॉ. मुखर्जी ने लार्ड लिनलिथगो की एकपक्षीय घोषणा की तीव्र निंदा की थी। दिसम्बर १९४० ई. में उन्होंने मदुरै में हिन्दू महासभा के अधिवेशन में अध्यक्षता करते हुए कहा था कि वे ब्रिटिश सरकार के युद्ध सिद्धांतों तथा उद्देश्यों को स्वीकार नहीं करते, जब तक भारत के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया जाता।

डॉ. मुखर्जी एक ओर 'फासिज्म व नाजिज्म' तथा दूसरी ओर साम्राज्यवाद, दोनों के उद्देश्यों का कमजोर देशों पर अधिपत्य स्थापित करना मानते थे। साथ ही यह मांग की कि भारतीयों को श्सैनिक प्रशिक्षणश दिया जाय ताकि यदि जापान का अचानक आक्रमण हो तो वे देश की रक्षा कर सके। साथ ही डॉ. मुखर्जी ने धमकी दी कि यदि वास्तविक सत्ता का हस्तांतरण की बात नहीं होती तो सीधी कार्रवाई होगी। उल्लेखनीय है कि यह वह समय था जब इसी प्रश्न पर कांग्रेस का नेतृत्व बंटा हुआ था तथा भारतीय कम्युनिस्ट शीघ्र ही पासा पलटकर रातोंरात सरकारी एजेंट अथवा मुखबिर बन रहे थे। डॉ. मुखजी तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के पारखी थे। १९४१ में बंगाल के फजलूल हक को मुस्लिम लीग के सहयोग लेने से अपनी स्थिति डांवाडोल लगी। मुस्लिम लीग के बंगाली नेता नाजिमुद्दीन तथा सुहरावर्दी शासन पलटने की ताक में थे। फजलूल हक को किसी हिन्दू संगठन के सहारे की आवश्यकता थी। डॉ. मुखर्जी ने हिन्दू हित में उसके निमंत्रण को स्वीकार किया। १२ दिसम्बर १९४१ को मंत्रिमंडल बना तथा डॉ. मुखर्जी को वित्त मंत्री बनाया गया। वे लगभग दो वर्ष से अधिक समय तक वित्त मंत्री रहे।

वित्त मंत्री रहते हुए भी उनका मुख्य केन्द्र बिन्दु राष्ट्रनीति रहा। मार्च १९४२ में क्रिप्स मिशन के आगमन पर तथा उसके बेहूदे सुझावों पर सबसे पहले अस्वीकृति की मुहर डॉ. मुखर्जी ने लगाई। वे इस संदर्भ में पटेल से भी मिले जिसने उन्हें सहयोग देने का आश्वासन दिया (देखें, डायरी के पृ. ६२-६४)

डॉ. मुखर्जी ने १९४२ के आंदोलन में पकड़े गये सत्याग्रहियों की विविध प्रकार से सहायता की। महात्मा गांधी की रिहाई की मांग की। उन्होंने राजगोपालाचारी सूत्र/तथा कांग्रेस कार्यकारिणी के समझौतावादी सुझावों की कड़ी आलोचना की। उन्होंने हिन्दुओं के अधिकारों, हितों तथा सुरक्षा की मांग की। उन्होंने अपने भाषणों में हिन्दू-मुसलमान या ईसाई कोई भी हो सर्वप्रथम भारतीय होने की बात कही (डॉ. मुखजी, अवैक हिन्दुस्थान, पृ. ७६-७७) उन्होंने अपने भाषणों में हिन्दू की परिभाषा दी। उनके अनुसार भारत में पैदा हुए किसी भी भारतीय मत तथा सम्प्रदाय में आस्था तथा भारत को अपनी पवित्र पितृभूमि मानने वाला हिन्दू है (अवैक हिन्दुस्थान पृ. १२१)

अगस्त १९४५ ई. में लार्ड वेवल ने शिमला सम्मेलन किया। उद्देश्य था भारत में अंतरिम सरकार की स्थापना, जिसमें कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग की समान कांग्रेस ने अंतरिम सरकार में भाग लेने की स्वीकृति दे दी। डॉ. मुखजी ने इसका दो आधार पर विरोध किया, प्रथम, समानता का सिद्धांत गलत तथा अन्यायपूर्ण है जबकि हिन्दू ६० प्रतिशत तथा मुस्लिम २४

प्रतिशत हैं। दूसरे, सत्ता हस्तातरण के बाद भी प्रशासकीय अधिकार १९१९ के अधिनियम के अनुकूल ही बने रहेंगे। १९४६ ई. में कैबिनेट मिशन भारत में आया, जिसके द्वारा अंतरिम सरकार की स्थापना हुई। जिसे डॉ. मुखर्जी ने कैबिनेट मिशन के सुझावों को पाकिस्तान निर्माण का पासपोर्ट कहा। आठ मार्च १९४७ को कांग्रेस ने पहली बार पंजाब विभाजन को स्वीकार किया था। कुछ काल बाद यह मांग बंगाल में भी उठी।

महान राजनीतिज्ञ

डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी बंगाल विधानसभा से चुनकर भारत की संविधान सभा के लिए चुने गए थे। गांधी जी के प्रयत्नों से भारत सरकार में कुछ गैर कांग्रेसी व्यक्तियों को भी सम्मिलित किया गया। वीर सावरकर के कहने पर डॉ. मुखर्जी भी इसमें शामिल हुए। उन्हें उद्योग तथा आपूर्ति विभाग का मंत्री बनाया गया। वे लगभग ढाई वर्ष इसमें रहे। उनके समय बंगाल में कई बड़े उद्योग लगाये गए। उनका अब भी मुख्य लक्ष्य हिन्दुओं के हितों की रक्षा करना था। वे पाकिस्तान के साथ एक मजबूत नीति चाहते थे। पाकिस्तान में रह रहे हिन्दू उनकी चिंता का मुख्य विषय बने रहे। इसके साथ ही हैदराबाद तथा कश्मीर के प्रश्न पर वे बड़े गंभीर थे। हैदराबाद का निजाम उस्मान अली पूर्णतः स्वतंत्र शासक बनना चाहता था। डॉ. मुखर्जी इस संदर्भ में नेहरू जी की कमजोरी जानते थे। वे इसके लिए सरदार पटेल को उपयुक्त व्यक्ति मानते थे। अतः इस मुद्दे पर पहले ही उन्होंने पटेल से स्वीकृति ले ली थी। अतः जब विषय नेहरू जी के सम्मुख आया तो नेहरू के कुछ बोलने से पूर्व सरदार पटेल ने स्वीकृति दे दी। अतः इसी प्रकार कश्मीर की गंभीर समस्या थी।

कश्मीर के प्रश्न पर डॉ. मुखर्जी का नेहरू से टकराव था। डॉ. मुखर्जी का एक अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य १९५१ में भारतीय जनसंघ की स्थापना करना था। उन्हें लगता था कि हिन्दू महासभा को सामाजिक तथा सांस्कृतिक उत्थान के कार्यों में लगना चाहिए। राजनीतिक क्षेत्र में एक बड़ी पार्टी की आवश्यकता है। अतः सरसंघचालक श्रीगुरुजी के सहयोग तथा कुछ कार्यकर्ताओं की मदद से २१ अक्तूबर १९५१ में एक अखिल भारतीय कन्वेंशन बुलाई गई इसमें भारत विभाजन को एक दुःखांतक बेवकूफी माना गया जिससे भारत की कोई समस्या न सुलझी तथा भारत की पुन : एकीकरण की बात कही गई। इसे शांति मार्ग से दोनों देशों की जनता की राय से करने की बात भी कही गई पाकिस्तान में हिन्दुओं की सुरक्षा तथा उनकी संपत्ति की रक्षा की बात भी कही गई। समस्याओं का हल श्कम्युनलश न मानकर राजनीतिक तथा आर्थिक ढंग से करने को कहा गया। (देखें पोर्टेट पृ. १०९) पंडित नेहरू ने प्रारंभ से ही जनसंघ को साम्प्रदायिक कहना शुरू कर दिया था। डॉ. मुखर्जी ने इसके उत्तर में पंडित नेहरू की मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति तथा वोट प्राप्त करने के लिए इसके दुरुपयोग की कड़ी आलोचना की। डॉ. मुखर्जी ने कहा कि जब मैं संपूर्ण भारतीय इतिहास का चित्र खींचता हूं। मुझे इतिहास में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिलता जैसा पं. नेहरू जिसने देश की इतनी हानि की हो। डॉ. मुखर्जी ने कहा कि पं. नेहरू पर अभारतीय तथा अहिन्दू होने का कुछ ज्यादा ही प्रभाव है। १९५२ के चुनाव में भारतीय जनसंघ को केवल तीन सीटें प्राप्त हुईं जिनमें एक

डॉ. मुखजी की सीट भी थी।

महान बलिदान

डॉ. मुखर्जी ने भारतीय संसद में पंडित नेहरू से सीधा प्रश्न किया कि कश्मीरी पहले भारतीय तथा बाद में कश्मीरी है या पहले कश्मीरी बाद में भारतीय अथवा पहले कश्मीर तथा बाद में दूसरे तीसरे नंबर पर भी कश्मीरी है। (पोर्टेट, पृ. १३२) इस संबंध ने उन्होंने पंडित नेहरू तथा कश्मीर के शेख अब्दुल्ला को कई पत्र लिखे, स्वयं मिले, परंतु पं. नेहरू तथा शेख अब्दुल्ला की मिलीभगत से कोई हल नहीं निकल रहा था। आखिर जम्मू में पंडित प्रेमनाथ डोगरा की प्रजा परिषद के नेतृत्व में भारत में कश्मीर में पूर्णतः विलय के लिए आंदोलन भी हुआ। अनेक लोगों का बलिदान हुआ। आंदोलन जम्मू के साथ दिल्ली में भी फैला। हजारों की संख्या में गिरतारियां हुई। डॉ. मुखर्जी का नेहरू तथा शेख अब्दुल्ला से आखिरी पत्र व्यवहार ६ जनवरी १९५३ से २३ फरवरी १९५३ तक हुआ। नेहरू ने डॉ. मुखर्जी से मिलने से भी इंकार कर दिया।

आखिर भारत में कश्मीर के पूर्ण विलय तथा एकता के लिए डॉ. मुखर्जी स्वयं ८ मई १९५३ को दिल्ली से कश्मीर के लिए चल पड़े। उन्होंने अपने भाषण में कहा, घबराओ नहीं, जीत हमारी होगी। रास्ते में अनेक अड़चनें डाली गईं। पहले बिना परमिट जम्मू जाने से रोका तथा बाद में अनुमति दी। पर उन्हें शीघ्र ही गिरफ्तार कर लिया गया। शेख अब्दुल्ला की जेल में रखा गया। आखिर चालीस दिन के पश्चात २३ जून १९५३ को रहस्य तथा गोपनीय ढंग से उनका प्राणोत्सर्ग हुआ। मां योगमाया ने पंडित नेहरू को कई पत्र लिखे पर देश के प्रधानमंत्री के पास कोई उत्तर न था। मां ने इस महान बलिदान पर कहा, 'मैंने अपने पुत्र को बहुत पहले ही देश की निस्वार्थ सेवा के लिए समर्पित कर दिया था और मेरे पुत्र ने मातृभूमि के लिए अपने जीवन का बलिदान दिया।' धन्य है ऐसा मां और उसका महान देशभक्त पुत्र जो देश की एकता तथा अखण्डता के लिए राष्ट्रदेव के सम्मुख समर्पित हो गया।

इतिहास दृष्टि/डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी के बलिदान दिवस (२३ जून) पर विशेष-पांचजन्य में प्रकशित

अखंड भारत के पुरोधा डॉ मुखर्जी

✍ डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी मूलतः शिक्षा से जुड़े हुए विद्वान व्यक्ति थे। शिक्षाविद एवं विधिवेत्ता होने की योग्यता उन्हें विरासत में प्राप्त हुयी थी। वे संवेदनशील समाजकर्मी, राष्ट्रवादी राजनेता एवं प्रखर सांसद बने। उन्होंने युगधर्म के आह्वान को स्वीकार किया।

राष्ट्रीय एकात्मता एवं अखण्डता के प्रति उनकी आगाध श्रद्धा ने उन्हें राजनीति के समर में झोंक दिया। अंग्रेजों की 'फूट डालो व राज करो' की नीति ने मुस्लिम लीग को स्थापित किया था। डॉ. मुखर्जी ने हिन्दू महासभा का नेतृत्व ग्रहण कर इस नीति को ललकारा। महात्मा गांधी ने उनके हिन्दू महासभा में शामिल होने का स्वागत किया क्योंकि उनका मत था कि हिन्दू महासभा में मालवीय जी के बाद किसी योग्य व्यक्ति के मार्गदर्शन की जरूरत थी। कांग्रेस यदि उनकी सलाह को मानती तो हिन्दू महासभा कांग्रेस की ताकत बनती तथा मुस्लिम लीग की भारत विभाजन की मनोकामना पूर्ण नहीं होती।

कांग्रेस ने विभाजन का प्रस्ताव स्वीकार करते हुये पूरे बंगाल एवं पूरे पंजाब को पाकिस्तान को देना स्वीकार कर लिया था। डॉ. मुखर्जी ने इसका प्रखर विरोध किया, परिणामतः बंगाल एवं पंजाब का विभाजन हुआ। विभाजन के संदर्भ में पंडित नेहरू के एक आरोप के जवाब में मुखर्जी ने कहा आपने भारत का विभाजन करवाया तथा मैंने पाकिस्तान का विभाजन करवाया है।

डॉ. मुखर्जी मुस्लिम विरोधी नहीं वरन् मुस्लिम लीग विरोधी थे। १९३७ के चुनावों में डॉ. मुखर्जी के प्रयत्नों ने बंगाल में मुस्लिम लीग को धूल चटाई तथा ए.के. फजलुल हक की अध्यक्षता वाली कृषक प्रजा पार्टी की सरकार बंगाल में बनी। डॉ. मुखर्जी स्वयं इस सरकार में शामिल हुए। दुर्भाग्य से १९४६ के चुनावों में सिंध व बंगाल में मुस्लिम लीग सरकार बनाने में सफल हो गयी। मुस्लिम लीग कलकत्ता और लाहौर को पाकिस्तान में मिलाने के लिए कटिबद्ध थी। डॉ. मुखर्जी के प्रयत्नों से कलकत्ता तो बच गया, लेकिन लाहौर को बचाना सम्भव नहीं हुआ। डॉ. मुखर्जी ने कांग्रेस में जाने की बजाय हिन्दू महासभा में काम करना तय किया था। लेकिन कलकत्ता में उन्होंने हिन्दू महासभा छोड़ दी, क्योंकि महासभा ने उनका यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया कि महासभा सभी भारतीयों के लिए अपनी सदस्यता के द्वार खोल दे। महात्मा गांधी के आग्रह पर कांग्रेसी न होते हुए भी डॉ. मुखर्जी पंडित जवाहर लाल नेहरू के प्रथम मंत्रिमण्डल में शामिल हुये। वे भारत के प्रथम उद्योग तथा आपूर्ति मंत्री बने। भारत की औद्योगिक नीति की नींव उनके ही द्वारा डाली गयी। लेकिन नेहरू की पाकिस्तान पोषक एवं हिंदू उपेक्षा की नीति के साथ चलना उनके लिए सम्भव नहीं था। अतः ८ अप्रैल, १९५० को अढ़ाई साल बाद, उन्होंने मंत्रिमण्डल से त्यागपत्र दे दिया। सत्ता उनके व्यक्तित्व को बांधने में

विफल रही, उन्होंने अपनी शर्तों पर राजनीति की।

मंत्रिमण्डल से बाहर आकर उन्होंने राष्ट्रवादी राजनैतिक दल के अपने संकल्प को पूरा किया। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय सरसंघचालक श्री माधवराज सदाशिवराव गोलवलकर (गुरुजी) की सहायता से भारतीय जनसंघ की स्थापना की। आजादी के आंदोलन में भारत की अखण्डता की रक्षा का मिशन लेकर डॉ. मुखर्जी राजनीति में आये थे। जनसंघ की स्थापना के साथ ही कश्मीर को भारत का अविभाज्य हिस्सा बनाने का आंदोलन उन्होंने प्रारम्भ किया। कश्मीर को विशेष सम्प्रभुता देकर धारा ३७० के अधीन अलग संविधान, अलग कार्यपालिका तथा अलग झंडा देने के प्रस्ताव को, प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू अपनी स्वीकृति दे चुके थे। संसद में बहस, आपसी वार्तालाप एवं पत्राचार के माध्यम से, उन्होंने सरकार को समझाने का बहुत प्रयत्न किया, लेकिन अंततः उन्हें इसके विरोध में सत्याग्रह करना पड़ा।

बिना परमिट लिए उन्होंने 'एक देश में दो विधान, एक देश में दो प्रधान, एक देश में दो निशान– नहीं चलेंगे– नहीं चलेंगे' के नारे लगाते हुये जम्मू–कश्मीर में प्रवेश किया। शेख अब्दुल्ला की सरकार ने उन्हें जेल में डाल दिया। वहां उनकी रहस्यमय परिस्थितियों में मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु का खुलासा आज तक नहीं हो सका है। भारत की अखण्डता के लिए आजाद भारत में, यह पहला बलिदान था। परिणामतः शेख अब्दुल्ला हटाये गये तथा अलग संविधान, अलग प्रधान एवं अलग झण्डे का प्रावधान निरस्त हुआ। धारा ३७० के बावजूद कश्मीर आज भारत का अभिन्न अंग बना हुआ है। इसका श्रेय सबसे अधिक डॉ. मुखर्जी को जाता है।

डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी कलकत्ता विश्वविद्यालय के छात्र थे। १९२४ में वे विश्वविद्यालय की सिंडिकेट व सीनेट में सदस्य चुने गये तथा बंगाल विधान परिषद् में, कलकत्ता विश्वविद्यालय का उन्होंने प्रतिनिधित्व किया। १९३६ में डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी ३३ वर्ष की कम उम्र में, कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति बन गये। कुलपति के रूप में उनके कार्यकाल के दौरान, गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने बंगला भाषा में दीक्षान्त भाषण दिया और इसके साथ ही बंगाल और अन्य भारतीय भाषाओं पर अंग्रेजी के प्रभुत्व का युग समाप्त हो गया। भारत के किसी भी विश्वविद्यालय में भारतीय भाषा में दिया गया यह प्रथम दीक्षान्त भाषण था।

१९४३ में बंगाल एक कृत्रिम अकाल का शिकार हुआ। डॉ. मुखर्जी ने इस अकाल का पूरी ताकत से सामना किया। उन्होंने अपनी साख दांव पर लगा देश को धन देने का आह्वान किया, लोगों का उचित प्रतिसाद प्राप्त हुआ तथा लाखों लोगों को मौत के कराल जाल से बचा लिया गया। उनका बहुआयामी व्यक्तित्व था। वे महाबोधि संगठन के भी अध्यक्ष बने, वे संविधान सभा में चुने गये, वे सांसद तथा मंत्री भी रहे। अनेक क्षेत्रों में, उनकी अद्‌भुत संवेदनशीलता, राष्ट्रभक्ति एवं प्रतिभा का प्रकटीकरण हुआ। राष्ट्र को उनकी सबसे महत्वपूर्ण देन थी भारतीय जनसंघ नामक राष्ट्रवादी राजनैतिक दल।

नीति के आधार पर वे स्वयं सत्ता छोड़ आये थे। वे प्रखर नेता थे। संसद में भारतीय जनसंघ छोटा दल था, लेकिन उनके नेतृत्व में संसद में राष्ट्रीय लोकतांत्रिक दल गठित हुआ,

जिसमें गणतंत्र परिषद, अकाली दल, हिन्दू महासभा एवं अनेक निर्दलीय सांसद शामिल थे। जब संसद में पंडित नेहरू ने भारतीय जनसंघ को कुचलने की बात कही तब डॉ. मुखर्जी ने कहा, ''हम देश की राजनीति से इस कुचलने वाली मनोवृत्ति को कुचल देंगे।'' उनकी शहादत पर शोक व्यक्त करते हुए तत्कालीन लोकसभा के अध्यक्ष श्री जी.वी. मावलंकर ने कहा वे हमारे महान देशभक्तों में से एक थे और राष्ट्र के लिए उनकी सेवाएं भी उतनी ही महान थीं। जिस स्थिति में उनका निधन हुआ वह स्थिति बड़ी ही दुःखदायी है। यही ईश्वर की इच्छा थी। इसमें कोई क्या कर सकता था? उनकी योग्यता, उनकी निष्पक्षता, अपने कार्यभार को कौशल्यपूर्ण निभाने की दक्षता, उनकी वाक्पटुता और सबसे अधिक उनकी देशभक्ति एवं अपने देशवासियों के प्रति उनके लगाव ने उन्हें हमारे सम्मान का पात्र बना दिया।''

वर्ष २०१२ में प्रवक्ता पर प्रकाशित

Syama Prasad with Prof. Satish Chandra Bose at Madhupur

इतिहास के पदचिन्ह :
श्यामा प्रसाद मुखर्जी की शहादत

कुलदीप चन्द्र अग्निहोत्री

सन् १९५३ का जून का महीना था। पंडित नेहरु के मंत्रिमंडल में उद्योग मंत्री रह चुके और अब भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी शेख अब्दुल्ला की श्रीनगर जेल में बंद थे। नेहरु के ही साथी रह चुके मौली चन्द्र ने उन्हें कहा भी कि मुखर्जी दिल के मरीज हैं, उन्हें पहाड की उंचाई पर मत कैद करें, कहीं नीचे रखा जा सकता है। मुखर्जी को जम्मू की जेल में भी रखा जा सकता था। लेकिन नेहरु ने कहा कि ठंडी जगह है, वे वहीं सुखी रहेंगे। उसके बाद नेहरु श्रीनगर भी गये, लेकिन उन्होंने अपने पुराने साथी मुखर्जी से मिलना उचित नहीं समझा। २३ जून को जेल में ही मुखर्जी का रहस्यमय परिस्थितियों में देहान्त हो गया। आज उनकी इस शहादत को साठ साल पूरे हो चुके हैं। इस अवसर पर इतिहास के पद चिन्हों पर एक बार फिर यात्रा करने का प्रयास।

डॉ. मुखर्जी रेल से ११ मई को अमृतसर से पठानकोट पहुँचे थे। पठानकोट में ही गुरदासपुर जिला के उपायुक्त, एक बार फिर मुखर्जी को मिले। ''उपायुक्त ने बताया कि मुझे निर्देश प्राप्त हुआ है कि मैं आप को बिना परमिट के जम्मू जाने दूँ। मैं आप को सायं चार बजे रावी नदी के माधोपुर पुल पर मिलूँगा।'' अब स्पष्ट हो गया कि मुखर्जी को जम्मू प्रवेश से रोका नहीं जायेगा। तुरन्त एक जीप का बन्दोबस्त किया जाने लगा जो जम्मू तक जा सके। लेकिन आखिर जीप के ड्राईवर के लिये तो परमिट जरुरी था। वह उसके बिना जम्मू जाने के लिये कैसे तैयार होता? इसी स्थिति में डॉ. मुखर्जी अपने साथियों समेत जम्मू की ओर रवाना हुये। उनके साथ दिल्ली जनसंघ के प्रधान वैद्य गुरुदत्त भी थे। पंजाब व जम्मू कश्मीर के सीमान्त गाँव माधोपुर पहुँचने पर, बकौल गुरुदत्त गुरदासपुर के डिप्टी कमिश्नर, बटाला और गुरदासपुर के रेजीडेंट मजिस्ट्रेट, पठानकोट के रेजीडेंट मजिस्ट्रेट और पुलिस कांस्टेबल तथा अन्य अफसर भारी संख्या में मौजूद थे। हमने अपनी जीप गाड़ी वहाँ खड़ी कर ली और डिप्टी कमिश्नर से जीप के लिये परमिट माँगा। उन्होंने बचन दिया कि हम लखनपुर पोस्ट तक जो पुल के उस पार है, चलें और वे परमिट भेज देंगे। हमारे जाने पर उन्होंने हमारी यात्रा की सफलता के लिये शुभ कामना प्रकट की। लेकिन पुल के उस पार लखनपुर तक पहुँचने का अवसर ही नहीं आया।

पुल के बीचोंबीच कठुआ के पुलिस अधीक्षक और कश्मीर मिलिशिया के जवान खड़े थे। उनमें से एक ने हाथ देकर जीप को रोक लिया। 'पुलिस अधीक्षक ने राज्य के मुख्य सचिव का एक आदेश मुखर्जी को थमा दिया जिसमें उनका कश्मीर प्रवेश निषेध था। डॉ. मुखर्जी विस्मृत थे। वे समझ नहीं पाये कि क्या यह शेख अब्दुल्ला की भारत सरकार से पूरी तरह स्वतंत्र होने

की घोषणा है या फिर भारत सरकार और कश्मीर सरकार की कोई साजिश है ? उन्होंने यह आदेश मानने से इन्कार कर दिया और आगे बढ़ने लगे। तब एक दूसरा पुलिस अधिकारी जम्मू दिशा की ओर से मोटर साईकिल पर आया और उसने एक दूसरा आदेश थमा दिया। यह आदेश उन्हें गिरफ्तार करने का था।यह सब कुछ एक नाटक की तरह हुआ, जिसकी योजना पहले से बनाई गई थी।'

दूसरा आदेश राज्य के पुलिस महानिदेशक का १० मई १९५३ का जारी किया हुआ था,जिसमें लिखा गया था कि, ''डॉ. मुखर्जी ने ऐसी गतिविधि की है, कर रहे हैं या करने वाले हैं, जो सार्वजनिक सुरक्षा एवं शान्ति के खिलाफ है, इस वजह से, उनको रोकने के लिये कैप्टन ए . अजीज, कठुआ के पुलिस अधीक्षक को निर्देश दिया जाता है कि वे डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी को गिरफ्तार करें और उन्हें अपनी हिरासत में श्रीनगर के केन्द्रीय कारागार में पहुँचायें।'' यह आदेश जन सुरक्षा अधिनियम के तहत जारी किया गया था। डॉ. मुखर्जी को बंदी बना लिया गया। अपने निजी सचिव अटल बिहारी वाजपेयी को उन्होंने कहा, ''पूरे देश को यह बताओं कि मैं आखिरकार जम्मू कश्मीर राज्य में दाखिल हो गया हूँ, हालाँकि एक बंदी के तौर पर और मेरी गैर मौजूदगी में मेरे काम को बाकी लोग आगे बढ़ायेंगे।'' पुलिस डॉ. मुखर्जी और उनके अन्य साथियों को लेकर श्रीनगर की ओर चल पड़ी और दूसरे दिन बाद दोपहर तीन बजे वे श्रीनगर की जेल में थे। डॉ. मुखर्जी की गिरफ्तारी के बाद पंडित मौलिचन्द्र शर्मा नेहरु से मिले और कहा, ''इनका भारी वदन है और हार्ट इनका ठीक नहीं है, इसलिये इनको कश्मीर की उंचाई पर मत भेजिये। नेहरु ने कहा, नहीं ये श्रीनगर में रहेंगे, कोई उंचाई भी नहीं है और न ही पहाड़ हैं। ठंडी जगह है, प्रसन्न रहेंगे।''

डॉ. मुखर्जी को श्रीनगर में निशात बाग के समीप के एक भवन को उप जेल घोषित कर रखा गया। वैद्य गुरुदत्त और टेकचंद को भी उसी मकान में रखा गया था। २४ मई को पंडित जवाहर लाल नेहरु भी विश्राम के लिये श्रीनगर पहुँचे लेकिन वे डॉ. मुखर्जी से नहीं मिले। नेहरु तो अपनी इच्छा से डॉ. मुखर्जी को मिलने नहीं गये लेकिन जो लोग मुखर्जी से मिलना चाहते थे, उन्हें भी मिलने की आज्ञा नहीं दी जा रही थी। उनके कुछ सम्बधी उन्हें मिलने के लिये श्रीनगर आ रहे थे, ''यह जान कर उन्हें भारी हर्ष हुआ। परन्तु उसके पश्चात उन्हें इस विषय में कोई समाचार नहीं मिला। (मुखर्जी की मृत्यु के बाद) यह समाचार मिला कि वे लोग श्रीनगर आये थे और उन्होंने भेंट करने के लिये प्रार्थना पत्र भी दिया था, परन्तु मुलाकात की स्वीकृति नहीं मिली। डॉ. मुखर्जी का लड़का पटना से दिल्ली पहुँचा और उसने भारत सरकार से कश्मीर जाने के लिये परमिट माँगा। भारत सरकार ने एक सप्ताह की आनाकानी के बाद परमिट देने से इन्कार कर दिया। वे अधिकारी जो परमिट देने का अधिकार रखते थे, बोले– यदि आप सैर करने के लिये जाना चाहते हैं तो दो मिनट में परमिट बनाया जा सकता है। परन्तु आप अपने पिताजी से मिलने जाना चाहते हैं, इस कारण मैं परमिट जारी नहीं कर सकता। डॉ. साहिब के सुपुत्र को निराश पटना लौट जाना पड़ा। श्री हुक्म सिंह ने व्यक्तिगत मित्र के नाते मिलने की अनुमति मांगी थी, परन्तु वह नहीं दी गई। जब उन्होंने कश्मीर सरकार की कुछ इच्छाओं को डॉ. मुखर्जी तक पहुँचाने का जिम्मा लिया तब ही उनको भेंट करने की

स्वीकृति मिली। इसी प्रकार डॉ. मुखर्जी के लिये बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर करने के लिये आये श्री उमा शंकर त्रिवेदी, एडवोकेट सुप्रीम कोर्ट को भी मिलने की स्वीकृति तब तक नहीं दी गई जब तक जम्मू कश्मीर हाई कोर्ट ने पृथक से मिलने की आज्ञा नहीं दे दी।'' १६ जून को पंडित प्रेमनाथ डोगरा को भी उसी मकान में लाया गया, जहाँ मुखर्जी कैद थे, लेकिन जगह इतनी छोटी थी कि उनके लिये ''परिसर में ही तम्बू लगाना पड़ा।''

१६ जून की रात्रि को ही मुखर्जी ने पीठ और छाती में दर्द की शिकायत की। अगले दिन डॉ. अली मोहम्मद जेल में आये और उन्होंने रोग की पहचान शुष्क पार्श्वशूल की। डॉ. अली ने उन्हें स्ट्रेप्टोमाइसिन का टीका लगाया। डॉ. मुखर्जी ने अलबत्ता अली को बताया कि उनके निजी डाक्टर ने उन्हें स्ट्रेप्टोमाइसिन की मनाही की है। लेकिन अली ने चिन्ता न करने के लिये कहा और कुछ दर्द निवारक गोलियाँ भी दीं। अगले दिन बुखार व दर्द दोनों बढ़ने लगे। २२ जून तक आते आते हालत और भी गंभीर हो गई। तड़के तीन बजे डॉ. मुखर्जी के लिये दर्द असह्य हो गया तो उन्होंने वैद्य गुरुदत्त को जगाया। शायद उन्हें दिल का दौरा पड़ा था। जेल अधीक्षक ने डाक्टर को बुलाया। डॉ. अली मोहम्मद सुबह सात-आठ बजे के करीब पहुँचे और उन्होंने मुखर्जी को किसी नर्सिंग हाउस में ले जाने की सलाह दी। परन्तु जेल अधीक्षक अपने बलबूते ऐसा नहीं कर सकते थे। उसके लिये जिलाधिकारी की अनुमति लेना आवश्यक था और वे इसकी आवश्यक खानापूर्ति में जुट गये। समय हाथ से निकला जा रहा था। लगभग दस बज गये थे। तभी उमा शंकर त्रिवेदी आ पहुँचे। त्रिवेदी ने डॉ. मुखर्जी की गिरफ्तारी को चुनौती देने वाली बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका जम्मू कश्मीर उच्च न्यायालय में दायर कर रखी थी। आज ही उस पर सुनवाई होने वाली थी।

११-१२ के बीच जेल अधीक्षक टैक्सी लेकर आये और डॉ. मुखर्जी को श्रीनगर के सरकारी अस्पताल में भर्ती करवा दिया गया। सायं साढ़े सात बजे उमा शंकर त्रिवेदी फिर उन्हें मिलने के लिये पहुँचे। उस दिन राज्य के उच्च न्यायालय में मुखर्जी की बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका पर सुनवाई हुई थी। न्यायाधीश जिया लाल कलाम ने निर्णय अगले दिन के लिये सुरक्षित कर दिया था। ''त्रिवेदी को भरोसा था कि अगले दिन जब फैसला आयेगा तो निश्चित ही मुखर्जी को छोड़ दिया जायेगा।''

लेकिन डॉ. मुखर्जी को मुक्ति के लिये इस निर्णय की जरुरत नहीं पड़ी। २३ जून को तड़के पौने चार बजे त्रिवेदी के पास पुलिस अधीक्षक पहुँचे और डॉ. मुखर्जी की तबीयत खराब है, यह बता कर उन्हें अपने साथ अस्पताल ले गये। इसी प्रकार जेल से पंडित प्रेमनाथ डोगरा, वैद्य गुरुदत्त और टेकचंद को अस्पताल लाया गया। सब लोग अस्पताल पहुँच गये तो उन्हें बता दिया गया कि तीन बज कर चालीस मिनट पर डॉ. मुखर्जी की मृत्यु हो चुकी थी। मृत्यु के समय उनकी आयु बाबन साल थी और दो सप्ताह बाद छह जुलाई को उनका जन्म दिन आने वाला था। जिस समय डॉ. मुखर्जी अंतिम साँस ले रहे थे उस समय पंडित जवाहर लाल नेहरु लंदन में महारानी एलिजाबेथ द्वितीय के राज्याभिषेक में भाग ले रहे थे।

१६४६ में महाराजा हरि सिंह की जेल में बंद अपने मित्र शेख अब्दुल्ला के मुकद्दमे की

पैरवी करने के लिए पंडित जवाहर लाल नेहरु जम्मू कश्मीर गये थे। रियासत में उस समय परिस्थिति ठीक नहीं थी, इसलिए उनको महाराजा की पुलिस ने कोहाला पुल पर रोक लिया था। परन्तु महाराजा ने कोहाला अतिथि गृह में उनके सम्मानपूर्वक ठहरने की व्यवस्था की। तीन दिन बाद नेहरू वापस चले गए। उसके ठीक छह साल बाद डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी को उसी शेख अब्दुल्ला ने यह कह कर गिरफ्तार कर लिया कि आपको रियासत में प्रवेश की अनुमति नहीं है। अब जम्मू कश्मीर रियासत नहीं थी बल्कि भारत संघ का एक अभिन्न अंग थी। लेकिन शेख ने डॉ. मुखर्जी को सम्मानपूर्वक रिहा नहीं किया बल्कि पूरे ४३ दिन बाद उनकी लाश कोलकाता उनके घर पहुंचा दी। बहुत वर्षों बाद, महाराजा हरि सिंह के पुत्र और उस समय सदर-ए-रियासत कर्ण सिंह ने लिखा, ''सरकार ने न तो मुझे (डॉ. मुखर्जी) की बीमारी की कोई सूचना दी थी और न ही उन्हें अस्पताल भेजने की। यहाँ तक की मुझे उनकी मृत्यु का समाचार भी अनधिकृत सूत्रों द्वारा प्राप्त हुआ और वह भी काफी देर से। तब तक उनका शव भी हवाई जहाज द्वारा श्रीनगर से बाहर भेजा जा चुका था।''

प्रजा परिषद की ओर से जम्मू के परेड ग्राउंड में डॉ. मुखर्जी के देहावसान पर एक सार्वजनिक शोक सभा का आयोजन २४ जून को किया गया। सभा स्थल खचाखच भरा हुआ था। तिल धरने की जगह नहीं बची थी। परिषद के संगठनमंत्री भगवत स्वरुप ने शोक स्वरुप तेरह दिन के लिये आन्दोलन स्थगित करने की सूचना दी। प्रेम नाथ डोगरा ने स्पष्ट कर दिया, ''१३ दिन तक डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी की मृत्यु पर शोक मनाने के बाद, कश्मीर को पूर्णतया भारत में मिलाने के लिये पुनः अधिक शक्तिशाली आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया जायेगा। देश के प्रत्येक व्यक्ति को इस महान यज्ञ में कूदने के लिये तैयार रहना चाहिये।''

पंडित प्रेम नाथ डोगरा की बख्शी गुलाम मोहम्मद और राज्य के उप गृहमंत्री दुर्गा प्रसाद धर की भेंट हुई। मौलिचन्द्र शर्मा और दुर्गा दास वर्मा से भी इन लोगों ने भेंट की। स्वयं पंडित नेहरु भी प्रजा परिषद के नेताओं से मिले व उनकी बातों को सुना।

डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी की शहादत के बाद प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरु ने ३ जुलाई को सभी पक्षों से आन्दोलन बंद करने की अपील की। उस अपील को ध्यान में रखते हुये प्रजा परिषद ने सात जुलाई १९५३ को अपना आन्दोलन समाप्त कर दिया था। प्रजा परिषद द्वारा आन्दोलन समाप्त कर देने पर विभिन्न राजनैतिक दलों की बनी संयुक्त संघर्ष समिति ने भी अपना देश भर में परिषद के पक्ष में चलाया जा रहा आन्दोलन सात जुलाई को ही समाप्त करने की घोषणा कर दी। समिति ने घोषणा की कि, ''प्रजा परिषद आन्दोलन के सहानुभूति तथा नैतिक समर्थन में तीन संस्थाओं ने मिलकर भारत में सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ किया था। यह भारत की एकता अखंडता को बनाये रखने के लिये तथा मजहब पर आधारित पृथकतावादी शक्तियों का विरोध करने के लिये चलाया गया था। प्रजा परिषद की मौलिक माँगे उचित तथा न्यायसंगत थीं। यह कहना पूर्णतया गलत है कि जम्मू कश्मीर के भारत में अधिमिलन न तथा वहाँ भारतीय संविधान को पूर्ण रुप से लागू किये जाने की मांग साम्प्रदायिक अथवा प्रतिक्रियावादी थी। जम्मू की जनता के साथ सहानुभूति दिखाते हुये भारत

की जनता ने हमारे आह्वान के प्रत्युत्तर में जो शान्तिपूर्ण एवं अहिंसात्मक आन्दोलन चलाया, उसके लिये समिति सभी का धन्यवाद करती है। हमने यथासम्भव जनता को आने वाले खतरों से आगाह कर दिया है और केवल सत्तारूढ़ दल को छोड़कर सभी दलों ने इसे स्वीकार भी किया है कि हमारी माँगें साम्प्रदायिक न होकर राजनैतिक व राष्ट्रीय हैं। सारी स्थिति का अध्ययन करने के पश्चात समिति इस निश्चय पर पहुँची है कि हमारा यह लक्ष्य कि इस सरकार पर इस समस्या को आशाप्रद उपाय से सुलझाने के लिये दबाव डालें, पूरा हो गया है। उपर्युक्त स्थितियों में तथा प्रधानमंत्री की अपील के कारण समिति यह निश्चित करती है कि इस समय सत्याग्रह आन्दोलन बंद कर दिया जाये। परन्तु जम्मू के लोगों की माँगों को लेकर वैधानिक संघर्ष किसी भी प्रकार से कमजोर नहीं होगा।'' डॉ. मुखर्जी ने जो कहा था, वह सभी सत्य सिद्ध हुआ। शेख अब्दुल्ला बर्खास्त हुये और गिरफ्तार हुये। पंडित नेहरु ने अपनी भूल स्वीकार कर अपने बीस साल के जिगरी दोस्त शेख के कुकृतयों पर खेद प्रकट किया व प्रजा परिषद के नेताओं से बातचीत की। जम्मू कश्मीर विधान सभा ने एक प्रस्ताव स्वीकृत कर राज्य के भारत में अधिमिलन का अनुमोदन किया। १४ मई १९५४ को भारत के राष्ट्रपति ने एक विशेष आज्ञा निकाल कर दिल्ली समझौते की शर्तें पूरी करवाईं।

प्रजा परिषद ने आन्दोलन का लेखा जोखा लेने के लिये ६ सितम्बर को सामान्य परिषद का सम्मेलन बुलाया। पंडित प्रेम नाथ डोगरा ने प्रतिनिधियों को सम्बोधित करते हुये कहा, ''आन्दोलन के इन आठ महीनों में राज्य सरकार ने भारत सरकार की सहायता से हम पर दमन व अत्याचार का हर तरीका इस्तेमाल किया गया। परन्तु इन प्रबल उत्तेजनाओं में जम्मू के लोगों का साहस, धैर्य, संयम और सबसे बढ़ कर अपने मनोरथ के सही होने का विश्वास, दोनों सरकारों की ताकत से भी कहीं ज्यादा ताकतवर सिद्ध हुआ। उनकी गोलियाँ, लाठियाँ, गैस के गोले, योजनाबद्ध तरीके से लूटपाट, तंग करना, पाश्विक तरीके से औरतों का अपमान करना और अनेक प्रकार से लोगों को अपमानित करना भी जम्मू के लोगों के उत्साह को भंग नहीं कर सका। क्योंकि भारत के साथ पूर्ण एकीकरण ही सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है। हम ने इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये कुछ प्रगति अवश्य की है लेकिन अभी भी कितना कुछ करने के लिये रहता है।'' आज डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी की शहादत को नमन करते समय वही संकल्प अभी भी कितना कुछ करने के लिये रहता है।

हत्या के अनसुलझे प्रश्न

माधोपुर पंजाब में स्थित एक स्थान है जहां से जम्मू कश्मीर में प्रवेश करने पर डॉ मुखर्जी को ११ मई १९५३ को शेख अब्दुल्ला ने हिरासत में ले लिया था। माधोपुर पंजाब का अंतिम छोर है और वहां से रावी नदी को पार करके जम्मू कश्मीर प्रांत प्रारंभ हो जाता है। उन दिनों कश्मीर में प्रवेश करने के लिए भारतीयों को एक प्रकार से पासपोर्ट टाईप का परमिट लेना पडता था। डॉ मुखर्जी बिना परमिट लिए जम्मू कश्मीर में गए थे। और वहां गिरफ्तार होने के दिन बाद ही २३ जून को जेल में ही उनकी संदेहजनक परिस्थितियों में मौत हो गयी। इस घटना को लगभग ६ दशक बीत चुके हैं। डॉ. मुखर्जी की रहस्यमय मृत्यु से सम्बंधित एक प्रश्न उसी प्रकार सलीब पर लटका रह जिस प्रकार २३ जून १९५३ को लटक रहा था। वह

प्रश्न था डॉ. मुखर्जी की मृत्यु या फिर हत्या से सम्बंधित षड्यंत्र को बेनकाब करना। डॉ. मुखर्जी की मृत्यु के पश्चात उनकी मां ने पं. नेहरु को एक पत्र लिखकर अपने बेटे की मृत्यु की जांच करवाने की मांग की थी। तब नेहरु ने उसे लिखा था- मैं इसी सच्चे और स्पष्ट निर्णय पर पहुंचा हूं कि इस घटना में कोई रहस्य नहीं। डॉ. मुखर्जी की मां श्रीमती योगमाया देवी ने नेहरु को जो पत्र लिखा वह बडा मार्मिक था और दुर्भाग्य से अभी भी अपने उत्तर की तलाश कर रहा है। योगमाया देवी ने लिखाय मैं तुम्हारी सफाई नहीं चाहती, जांच चाहती हूं। तुम्हारी दलीलें थोथी हैं और तुम सत्य का सामना करने से डरते हो। याद रखो तुम्हें जनता के और ईश्वर के सामने जवाब देना होगा। मैं अपने पुत्र की मृत्यु के लिए कश्मीर सरकार को ही जिम्मेदार समझती हूं और उस पर आरोप लगाती हूं कि उसने ही मेरे पुत्र की जान ली। मैं तुम्हारी सरकार पर यह आरोप लगाती हूं कि इस मामले को छुपाने और उसमें सांठगांठ करने का प्रयत्न किया गया है।' यहां तक की पश्चिमी बंगाल की कांग्रेसी सरकार के मुख्यमंत्री डॉ. विधानचंद राय ने मुखर्जी की हत्या की जांच सर्वोच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश से करवाने की जांच की। कांग्रेस के ही पुरुषोत्तम दास टण्डन ने भी डॉ. मुखर्जी हत्या की जांच की मांग की।

डॉ मुखर्जी को जिस तथाकथित जेल में रखा गया था वह उस समय एक उजाड स्थान पर स्थित थी और वहां से अस्पताल कई मील दूर था। जेल में टेलीफोन की भी व्यवस्था नहीं थी मृत्यु से पूर्व डॉ. मुखर्जी को १० मील दूर के अस्पताल में जिस गाडी में ले जाया गया उसमें उनके किसी और साथी को बैठने नहीं दिया गया। और सबसे बडी बात यह कि डॉ. मुखर्जी की व्यक्तिगत डायरी को रहस्यमय ढंग से गायब कर दिया गया। परिस्थितिजन्य साक्ष्यों से यह भी स्पष्ट होता है कि मुखर्जी को हिरासत में लेने के लिए भ किसी न किसी स्तर पर साजिश हुई। पंजाब सरकार डॉ. मुखर्जी को माधोपुर में ही हिरासत में ले सकती थी लेकिन वहां उन्हें गुरुदासपुर के उपायुक्त ने सूचित किया कि सरकार ने आपको जम्मू कश्मीर जाने की अनुमति दे दी है। कुछ प्रमुख समाचार पत्रों ने इस खबर को प्रकाशित भी कर दिया। लेकिन मुखर्जी को जम्मू कश्मीर में प्रवेश करते ही लखनपुर में हिरासत में ले लिया गया परन्तु उन्हे जम्मू में न रखकर लखनपुर से लगभग ५०० किलोमीटर दूर श्रीनगर में बीमारी की हालत में ही एक जीप में डालकर ले जाया गया। इतनी लम्बी यात्रा उनके लिए घातक थी। परन्तु पुलिस अधिकारी उन्हें श्रीनगर ले जाने में अडे रहे। लखनपुर में उन्हें हिरासत में लेने का शेख अब्दुल्ला सरकार और नेहरु सरकार को एक लाभ यह हुआ कि उच्चतम न्यायालय उनकी गिरफ्तारी के बारे में दखलंदाजी नहीं कर सकता था। जम्मू कश्मीर राज्य उच्चतम न्यायालय की पहुंच के बाहर था। सबसे बढकर, डॉ. मुखर्जी के ईलाज के समस्त दस्तावेज संदेहास्पद परिस्थितियों में छिपा लिए गए। इन्हीं समस्त साक्ष्यों को देखते हुए भारतीय जनसंघ समेत देश के अनेक प्रबुद्ध लोगों ने डॉ. मुखर्जी की हत्या की जांच की मांग की। शेख अब्दुल्ला की सरकार पर मुखर्जी की हत्या में मिलीभगत होने का शक इतना गहरा रहा था कि कुछ समय बाद ही अब्दुल्ला को गिरफ्तार कर लिया गया लेकिन मुखर्जी की हत्या की जांच के लिए तत्कालीन सरकार तैयार नहीं थी।

जब रात्रि गहरा जाती है तो वहां केवल रहता है डॉ. मुखर्जी का साया और रावी नदी की हाहाकार करती लहरें। रावी नदी का यह अभिशाप कहा जाय या उसका सौभाग्य की उसे शहीदों की शहादत की बारबार साक्षी बनना पडता है। ब्रिटिश शासकों ने जब भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु की अर्द्धरात्रि को हत्या कर उनके शवों को मिट्टी का तेल डालकर जलाने का प्रयास किया तो लोग उन अधजले शवों को उठाकर ले गए और रावी के किनारे ही उनका संस्कार किया। यही रावी एक दूसरे शहीद श्यामा प्रसाद मुखर्जी को जाते हुए देखती रही और अब उसी रावी के किनारे पर माधोपुर में पंजाब सरकार ने डॉ. मुखर्जी का बुत खडा कर दिया है। रावी प्रश्न करती है अपने इस शहीद पुत्र, जो हुगली से चलकर उस तक पहुंचा था, के हत्यारों के बारे में। लेकिन रावी के इस प्रश्न का उत्तर कौन देगा? रावी पर से गुजरते हुए लगता है डॉ. मुखर्जी उदास मुद्रा में खडे हैं। शायद, उनका और रावी का प्रश्न एक ही है। परन्तु इसका उत्तर देने का साहस कोई नहीं कर पा रहा। वे भी नहीं जिन्होंने स्वयं ही कभी यह प्रश्न उठाया था।

वर्ष २०१० में लिखा गया यह लेख प्रवक्ता.कॉम पर प्रकाशित है।

Syama Prasad at a condolence meeting of Rabindranath Tagore at Calcutta University Institute- 1940

डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी : एक दूरदर्शी राजनीतिक चिंतक

रविशंकर त्रिपाठी

श्यामाप्रसाद मुखर्जी एक दूरदर्शी राजनीतिक चिंतक थे। उन्होंने मुस्लिम लीग तथा मियां जिन्ना की अलगाववादी गतिविधियां देखकर वर्षों पूर्व यह भविष्यवाणी कर दी थी कि यदि कांग्रेसी नेता मुस्लिम लीग को तुष्ट करने के लिए उसकी हर मांग को स्वीकार करते रहे तो देर सवेर लीग के नेता भारत विभाजन की मांग उठाकर भारत को खंडित कर कट्टरपंथी इस्लामी राज्य बसाने की अपनी कुत्सित योजना में अवश्य सफल हो जाएंगे।

वर्ष १९४० में डॉ. मुखर्जी को हिन्दू महासभा का राष्ट्रीय कार्यवाहक अध्यक्ष मनोनीत किया गया। विनायक दमोदर सावरकर डॉ. मुखर्जी की दूरदर्शिता और निर्भीकता से बहुत प्रभावित थे। उन्हीं दिनों ढाका में मुस्लिम लीग की योजनानुसार हिन्दुओं की हत्या कराकर उन्हें आतंकित कर ढाका से भगाने को विवश होने अन्यथा धर्मपरिवर्तन कर मुसलमान बनाने की घटनाएं शुरू हुई। डॉ. मुखर्जी ने ब्रिटिश चीफ सेक्रेटरी को पत्र लिखकर उन्हें हिन्दुओं के नरसंहार की जानकारी दी तथा इच्छा व्यक्त की कि वे स्वयं ढाका जाकर स्थिति का अध्ययन करना चाहते हैं। सेक्रेटरी ने मुस्लिम लीग के मंत्रियों को तो ढाका भेज दिया किन्तु मुखर्जी के जाने की व्यवस्था नहीं की। डॉ. मुखर्जी एक मिनी वायुयान से ढाका जा पहुंचे। उन्होंने पीड़ित हिन्दुओं के क्षेत्र में पहुंचकर मुस्लिम लीग के गुंडों द्वारा किए जा रहे उत्पीड़न व हत्याओं की जानकारी प्राप्त की।

बंगाल मुस्लिम लीग का अध्यक्ष ढाका का नवाब था। वे नवाब के महल में जा पहुंचे तथा नवाब से निर्भीकतापूर्वक कहा, -रु ८२१६ मैं अपनी आंखों से सब कुछ देख व सुन चुका हूं। हिन्दुओं के इस नरसंहार की जानकारी से देश को अवगत कराऊंगा। यदि इन हत्याओं की प्रतिक्रिया देश के किसी कोने में हुई तो उसकी जिम्मेदारी मुस्लिम लीग की होगी। नवाब डॉ. मुखर्जी के रौद्र रूप को देखकर कांप उठा। उन्होंने बंगाल विधानसभा में ढाका की घटनाओं का पर्दाफाश किया।

वर्ष १९४३ में बंगाल दुर्भिक्ष के चपेट में आ गया। वे दुर्भिक्ष पीड़ितों की सहायता में जुट गए। उन्हें पता चला कि मुस्लिम लीग तथा खाकसार संगठन दुर्भिक्ष पीड़ित हिन्दुओं को अनाज आदि का प्रलोभन देकर उनका धर्मांतरण कराने का प्रयास करा रहा हैं। मुखर्जी ने बंगाल विधानसभा में कहा, -रु८२१६ प्राकृतिक आपदा में भी मजहबी कट्टरपंथियों द्वारा धर्मांतरण कराए जाने की घटनाएं मानवता विरोधी हैं। ऐसे दुष्प्रयासों को रोका जाना चाहिए।

दिसंबर १९४३ में अमृतसर में डॉ. मुखर्जी के अध्यक्षता में हिन्दू महासभा का अधिवेशन

हुआ। अपने अध्यक्षीण भाषण में डॉ. मुखर्जी ने चेतावनी देते हुए कहा –रु८२१६ यदि कांग्रेस मुस्लिम लीग को प्रसन्न करने के लिए उसकी हर मांग मानते हुए घुटने टेकती रही तो इसके दुष्परिणाम देश की एकता और अखंडता के भंग होने के रूप में सामने आएंगे। पाकिस्तान की मांग को यदि स्वीकार कर लिया गया तो इसके अत्यंत दुखद परिणाम होंगे।

एक दिन गांधी जी ने घोषणा की कि वे हिन्दू–मुस्लिम एकता के सपने को पूरा करने के लिए मियां जिन्ना से भेंट करने उनके निवास स्थान पर जाएंगे। डॉ. मुखर्जी को लगा कि इससे मियां जिन्ना का अहंकार चरम सीमा पर पहुंचेगा। उन्होंने १६ जुलाई १६४४ को गांधी जी को पत्र लिखाय गांधी जी ने उत्तर नहीं दिया। वीर सावरकर ने मुखर्जी को परामर्श दिया कि वे पुणे से कोलकाता लौटते समय वर्धा में रूककर गांधी जी से भेंट कर भारत विभाजन की स्वीकृति कदापि न देने का अनुरोध करें। मुखर्जी वर्धा पहुंचे तथा गांधी जी से भेट कर कहा, 'यदि आप जैसा महान नेता जिन्ना से मिलने लगा तो उसका दुस्साहस बढ़ जाएगा। अतः आप जिन्ना से मिलने जाकर उसका महत्व न बढ़ाएं। किंतु गांधी जी अपने दुराग्रह पर अटल रहे।

दिसंबर १६४४ में बिलासपुर में हिन्दू महासभा के २६वें राष्ट्रीय अधिवेशन में मुखर्जी ने अध्यक्षीय भाषण में कहा, –रु८२१६ ऐसी परिस्थिति बनने लगी थी कि मुसलमानों का एक बड़ा समुदाय भी भारत विभाजन का विरोधी होने लगा था। अचानक गांधी जी ने राजगोपालचारी के फार्मूले का समर्थन करके अदूरदर्शिता का परिचय दे डाला। इससे मुस्लिम लीग का उत्साह बढ़ गया है तथा वह नई–नई मांगे लेकर सामने आ रही है।

डॉ. मुखर्जी ने भारत विभाजन को साम्प्रदायिकता की समस्या का हल बताने वालों को चुनौती देते हुए कहा भारत का विभाजन कर पाकिस्तान बनाए जाने से पूरा देश मजहबी उन्माद के चपेट में आ जाएगा। हमेशा–हमेशा के लिए साम्प्रदायिक सौहार्द नष्ट हो जाएगा। इससे गृह युद्ध की सभांवना पैदा होगी।

उन्होंने कहा, ''यह जान लेना आवश्यक है कि पाकिस्तान बनाए जाने की मांग के पीछे इस्लामीकरण की अन्तरराष्ट्रीय योजना काम कर रही है। इससे निकृष्टतम मजहबी उन्माद तथा मतांधता घोर अनर्थ के रूप में सामने आएगी।''

डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी दूरदर्शी राजनेता थे। वे यह समझ चुके थे कि अनेक प्रयासों के बावजूद अब भारत का विभाजन रोका नहीं जा सकेगा। अतः उन्होंने बंगाल, पंजाब और असम के हिन्दू बहुल क्षेत्रों को पाकिस्तान में न मिलने देने के लिए जनजागरण शुरू कर दिया। मार्च १६४७ में उनके प्रयास से बंगाल में हिन्दू प्रतिनिधियों के सम्मेलन में सर्वसम्मत प्रस्ताव पारित किया गया कि बंगाल के हिन्दू बहुल क्षेत्रों को पाकिस्तान में कदापि न जाने दिया जाए। मुस्लिम लीग के नेता मियां सुहारावर्दी ने डॉ. मुखर्जी के बगांल के हिन्दू बहुल क्षेत्रों को पाकिस्तान में न मिलाए जाने की मांग को लेकर चलाए जा रहे अभियान से घबराकर संयुक्त स्वतंत्र बंगाल राज्य बनाए जाने का प्रस्ताव रखा। सुहारवर्दी की कुटिल योजना थी कि सभी बंगालियों को स्वतंत्र बंगाल का झासा देकर, उन्हें प्रांतीयता के भावना में फंसा लिया जाए। डॉ. मुखर्जी ने १३ मई को गांधी जी से भेंट कर उन्हें चेताया कि कांग्रेस को सुहरावर्ती के संयुक्त

स्वतंत्र बंगाल के धूर्ततापूर्ण झांसे में नहीं आना चाहिए।

डॉ. मुखर्जी तथा अन्य जागरूक हिन्दू नेताओं के सतत प्रयास का यह सुफल निकला कि बंगाल और पंजाब के हिन्दू बहूल क्षेत्रों को पाकिस्तान का अंग नहीं बनाया जा सका। और आगे चलकर डॉ. मुखर्जी ने कश्मीर को भारत से अलग किए जाने के भीषण षड्यंत्र को २३ जून १९५३ को श्रीनगर में नजरबंदी के दौरान अपना बलिदान देकर असफल कर दिखाया।

काश जवाहर लाल नेहरू ने उस समय डॉ. मुखर्जी की बात को समझा होता।

वर्ष २०१२ में प्रकाशित लेख

Syama Prasad delivering Convocation address at Vishwa Bharati

डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी : एक प्रखर राष्ट्रवादी

संजीव कुमार सिन्हा

भारतीय जनसंघ के संस्थापक अध्यक्ष डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी का विराट् व्यक्तित्व था। वे प्रखर विचारक, शिक्षाविद्, कुशल पार्लियामेंटेरियन, मानवतावादी और महान् बलिदानी थे। भारत की एकता और अखंडता को अक्षुण्ण रखने के लिए उन्होंने अपना प्राणोत्सर्ग कर दिया।

६ जुलाई १९०१ को कलकत्ता में जनमे डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी के पिता श्री आशुतोष मुकर्जी जाने-माने शिक्षाविद् थे। अध्ययन में प्रवीण डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी ने १९१७ में मैट्रिक, १९२१ में बीए, १९२३ में एमए की डिग्रियां प्राप्त कीं एवं १९२६ में इंग्लैंड से कानून की पढ़ाई की।

डॉ. मुकर्जी भारतीय भाषा के पक्षधर थे। उन्होंने स्वयं बंगाली में एमए किया। उन्हें मात्र ३३ वर्ष की आयु में कलकत्ता विश्वविद्यालय का उपकुलपति बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्होंने भारतीय भाषाओं में एमए शुरू किया और विश्वकवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर से बंगला भाषा में दीक्षान्त भाषण दिलवाया। एक गुलाम देश में स्वदेशी भाषा को प्रतिष्ठित कर डॉ. मुकर्जी ने औपनिवेशिक शासन को भाषायी चुनौती भी दी।

डॉ. मुकर्जी वीर सावरकर के प्रखर राष्ट्रवाद से प्रभावित होकर हिंदू महासभा में सम्मिलित हुए और १९४० में इसके अध्यक्ष बने।

सन् १९४२ में ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस के सभी छोटे-बड़े नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। देश नेतृत्वविहीन हो गया। उस समय डॉ. मुकर्जी बंगाल के हक मंत्रिमंडल में वित्त मंत्री थे, उन्होंने तत्काल इस पद से त्यागपत्र देकर सशक्त नेतृत्वकर्ता की भूमिका निभाई।

१९४३ में बंगाल में अकाल पड़ा। डॉ. मुकर्जी के प्रयासों से राहत कार्यों में तेजी आई, जिसके चलते लाखों के प्राण बचे।

डॉ. मुकर्जी की यह देश को अविस्मरणीय देन है कि उन्होंने बंगाल को पाकिस्तान में जाने से बचाया। जब ब्रिटिश सरकार ने भारत के विभाजन का प्रस्ताव किया और कांग्रेस के नेताओं ने विभाजन स्वीकार कर लिया तब डॉ. मुकर्जी ने बंगाल और पंजाब के विभाजन की मांग उठाकर प्रस्तावित पाकिस्तान का विभाजन करवाया और आधा बंगाल और आधा पंजाब खंडित भारत के लिए बचा लिया।

देश की आजादी के पश्चात् संविधान सभा और केन्द्रीय मंत्री के नाते उन्होंने शीघ्र ही अपना विशिष्ट स्थान बना लिया। महात्मा गांधी के अनुरोध पर डॉ. मुकर्जी प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व वाले पहले मंत्रिमंडल में शामिल हुए और उन्हें उद्योग का महत्वपूर्ण

सौंपा गया। उनके कार्यकाल में भारत की प्रथम औद्योगिक नीति की घोषणा की गई। डॉ. मुकर्जी ने चितरंजन लोको, सिंदरी फर्टिलाइजर्स, बंगलोर स्थित हिन्दुस्तान एयरोनॉटिक्स, दामोदर घाटी निगम जैसे प्रमुख उद्योगों की स्थापना की।

सन् १९५० में जब पं. नेहरू ने पाकिस्तान के प्रधानमंत्री लियाकत अली खान के साथ समझौता करके पूर्वी बंगाल के हिंदुओं को पाकिस्तानियों की दया पर छोड़ दिया, तब डॉ. मुकर्जी ने इसके विरोध में मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया और पं. नेहरू को चुनौती देने की ठानी।

डॉ. मुकर्जी एक प्रखर राष्ट्रवादी राजनीतिक दल बनाना चाहते थे। इसी सिलसिले में कलकत्ता में उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय सरसंघचालक परम पूजनीय श्रीगुरुजी से मिलकर अपनी बात रखी। श्रीगुरूजी ने कहा कि संघ तो राजनीति में भाग नहीं लेगा लेकिन कुछ आदर्श प्रचारक-कार्यकर्ता, सर्वश्री दीनदयाल उपाध्याय, अटल बिहारी वाजपेयी, कुशाभाऊ ठाकरे, सुंदर सिंह भंडारी, नानाजी देशमुख, जगन्नाथ राव जोशी, इस योजना में लगाए गए। २१ अक्टूबर १९५१ को नई दिल्ली स्थित रघुमल आर्य कन्या उच्च माध्यमिक विद्यालय में आयोजित एक कार्यक्रम में डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी के प्रयासों से भारतीय जनसंघ की स्थापना की गई।

सन् १९५२ में लोकसभा के प्रथम आमचुनाव में जनसंघ के केवल तीन सदस्य चुने गए और डॉ. मुकर्जी दक्षिण कलकत्ता से निर्वाचित हुए थे। उनको भारतीय राजनीति में गठबंधन का पुरोधा माना जा सकता है। उन्होंने कई दलों को मिलाकर ३२ सदस्यों वाली नेशनल डेमोक्रेटिक एलाएंस बनाया, जो विरोधी पक्ष में सबसे बड़ा था। इस प्रकार वह विरोधी पक्ष के नेता बने।

देश की आजादी के बाद से ही जम्मू-कश्मीर में अलगाववादी ताकतें सिर उठाने लगीं। इसके विरोध में प्रजा परिषद् का सत्याग्रह चला। डॉ. मुकर्जी ने इस सत्याग्रह को अपना समर्थन दिया। उस समय जम्मू-कश्मीर का अलग झंडा था, अलग संविधान था और वहां का मुख्यमंत्री प्रधानमंत्री कहलाता था। डॉ. मुकर्जी ने इसका प्रतिकार करते हुए नारा बुलंद किया- ''एक देश में दो निशान, एक देश में दो प्रधान, एक देश में दो विधान-नहीं चलेंगे, नहीं चलेंगे।'' उन दिनों जम्मू-कश्मीर में प्रवेश के लिए परमिट लेना पड़ता था। मई १९५३ में डॉ. मुकर्जी जम्मू-कश्मीर की यात्रा पर निकल पड़े। वह बिना परमिट के जम्मू-कश्मीर राज्य में प्रवेश हुए, जहां उन्हें गिरफ्तार कर नजरबंद कर दिया गया। ४० दिनों तक न उन्हें चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराई गई और न अन्य बुनियादी सुविधाएं दी गईं। २३ जून १९५३ को रहस्यमय परिस्थितियों उनकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार ५२ वर्ष की अल्पायु में भारत माता का एक सपूत राष्ट्रीय एकता व अखंडता के लिए शहीद हो गया।

डॉ. मुकर्जी का बलिदान व्यर्थ नहीं गया। जम्मू-कश्मीर में दो प्रधान, दो सर्वोच्च न्यायालय और दो निर्वाचन प्राधिकरण की व्यवस्था खत्म हुई। शेख अब्दुल्ला के षड्यंत्र का पर्दाफाश हुआ, उसे सत्ता से हटना पड़ा और जेल की हवा खानी पड़ी। ❍

(लेखक 'कमल संदेश' के सहायक संपादक हैं।)

डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जीः अखंड भारत के स्वप्न द्रष्टा

✍ शैलेन्द्र कुमार शुक्ला

डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी का कहना था कि भारत को आधुनिक राष्ट्र बनाने के साथ-साथ इसकी सदियों पूरानी सभ्यता और संस्कृति को संजोकर चलना होगा और आने वाली पीढ़ी को इसके गौरवशाली इतिहास से अवगत कराना होगा। और इसी सोच ने जन्म दिया भारतीय जनसंघ को। डॉ मुखर्जी जनसंघ के जरिए देश में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और एक वैक्लपिक वैचारिक राजनीतिक परंपरा की शुरुआत करने का प्रयास किया था। क्योंकि वे पंडित नेहरू के राजनैतिक स्वार्थों से वाकिफ थे, पंडित नेहरू देश के विभाजन के बाद भी कोई सबक नहीं ले रहे थे, इसका परिणाम यह हुआ कि आधा कश्मीर हाथ से चला गया और हैदराबाद पर भी भारतीय हुकुमत की पकड़ लगातार ढीली पड़ती जा रही थी। स्वार्थ परक राजनीति और तुष्टीकरण देश को लगातार निराशा की गर्त में ढ़केल रहा था। यह घटना डॉ. मुखर्जी को लगातार परेशान करती रही। जिससे विवश होकर डॉ. मुखर्जी ने भारत में कांग्रेस के सामने वैक्लपिक राजनीति की नींव डाली।

भारत विभाजन के षड्यंत्र का पूर्वानुमान

डॉ. मुखर्जी एक कुशल राजनीतिज्ञ होने के साथ साथ मौके की नजाकत को भॉपने में भी माहिर थे। डॉ. मुखर्जी को भारत विभाजन की भनक १९४० में ही लग गयी थी। जिसका जिक्र वे महात्मा गांधी से मिलकर की। उन्होने लेडी मिंटों की गुप्त डायरी में दर्ज भारत विभाजन की पटकथा के दुष्परिणाम को गांधी जी को विस्तार से समझाया था। जिसका असर १९४२ में इलाहाबद में संपन्न हुए अखिलभारतीय कांग्रेस कमेटी की कार्यकारिणी की बैठक में दिखी। इस बैठक में भारत का विभाजन किसी भी सूरत में स्वीकार नहीं करने की बात कही गयी थी, लेकिन कथनी और करनी में अंतर ही कांग्रेस का चरित्र का चरित्र रहा है। अपने इसी चरित्र को दिखाते हुए सत्ता पाते ही वही कांग्रेस पूर्व में किए अपने वादे को भूलकर भारत की विभाजन स्वीकार कर लिया।

अंग्रेजों की योजना असम समेत पूरा बंगाल पाकिस्तान में शामिल करने की थी। यदि इसमें वे कामयाब नहीं होते तो उन्होंने दूसरा प्लान भी तैयार किया हुआ था जिसमें बंगाल को स्वतंत्र देश के रुप में स्थापित करना था। जाहिर है यह स्वतंत्र बंगाल बाद में पाकिस्तान में शामिल हो जाता। उस समय कांग्रेस दिल्ली में सत्ता मिल जाने की संभावना से ही इतना प्रसन्न थी कि उसकी, मुस्लिम लीग और ब्रिटेन के इस षड्यंत्र को नाकामयाब करने में कोई रुचि नहीं थी। वो श्री गोपीनाथ बारदोलोई और डॉ मुखर्जी जैसा व्यक्तित्व इस देश के पास था जो असम को

तो पाकिस्तान में जाने से बचाया ही, पश्चिमी बंगाल को भी पाकिस्तान में शामिल करवाने की साजिश नाकामयाब की। तभी बाद में किसी ने कहा था कि अंग्रेजों ने मुस्लिम लीग के साथ मिल कर, कांग्रेस की सत्ता लोलुपता को भाँप कर, भारत का विभाजन किया लेकिन डॉ. मुखर्जी ने अपनी बुद्धिमता और दुरदर्शी दृष्टीकोण का परिचय देते हुए पाकिस्तान को ही दो हिस्से में करवा दिया। जिसका नतीजा १९७१ में स्वतंत्र बांग्लादेश के रूप में देखने को मिला। चूंकि पाकिस्तान विभाजन की जमीन उसी समय तैयार हो चुकी थी।

भारत विभाजन के बाद पूर्वी बंगाल पाकिस्तान का हिस्सा बन गया लेकिन लेकिन डॉ. मुखर्जी की आशंकाएं सही निकलीं। पूर्वी बंगाल के भारत से अलग होते ही मुस्लिम लीग ने वहाँ की सरकार से मिल कर हिन्दुओं को खदेड़ना शुरु कर दिया। उनकी सम्पत्ति को लूटना शुरु कर दिया और लड़कियों का अपहरण शुरु हो गया। पूर्वी पाकिस्तान, जो उन दिनों पूर्वी बंगाल भी कहलाता था, के हिन्दुओं के सामने एक ही विकल्प था कि वे या तो इस्लाम स्वीकार कर लें या फिर अपनी मातृभूमि छोड़ दें। पूर्वी बंगाल में मानों एक बार फिर से मुगल वंश का शासन आ गया हो।

डॉ. मुखर्जी उन दिनों नेहरु के मंत्रिमंडल में उद्योग मंत्री थे। महात्मा गान्धी के आग्रह पर सत्ता हस्तांतरण के समय शुद्ध कांग्रेसी सरकार न बना कर दिल्ली में राष्ट्रीय सरकार का गठन किया गया था। उसी कारण से डॉ. मुखर्जी मंत्री बने थे। मुखर्जी ने नेहरु से आग्रह किया कि भारत सरकार पाकिस्तान से बंगाली हिन्दुओं का नर संहार और मतान्तरण बंद करने के लिये कहे। यदि पाकिस्तान बंगाली हिन्दुओं को अपने यहाँ से खदेड़ना बंद नहीं करता तो पूर्वी बंगाल से निष्कासित लोगों की संख्या के अनुपात से वहाँ की जमीन पुनः भारत में शामिल की जाये। परन्तु पश्चिमी अवधारणाओं के समर्थक नेहरु के लिये शायद मतान्तरण कोई विषय ही नहीं था। उनकी चलती तो वे शायद पूर्वी बंगाल के सभी हिन्दुओं को मतान्तरित होकर प्राण रक्षा की सलाह भी दे देते। नेहरु ने पूर्वी बंगाल के हिन्दुओं की रक्षा करने की बजाय पाकिस्तान के उस समय के प्रधानमंत्री पर ही भरोसा करना ज्यादा ठीक समझा। नेहरु की इसी शुतुरमुर्गी नीति से आहत होकर मुखर्जी ने मंत्रि परिषद से त्यागपत्र दे दिया था।

उदारमना डॉ. मुखर्जी

डॉ. मुखर्जी का व्यक्तित्व जितना विशाल था वैसा ही उनका मन भी ममता और वात्सल्य की अतल गहराइयों वाला था। वे तत्कालीन नेताओं जैसे जिन्ना सुहरावर्दी नेहरू और शेख जैसे नहीं थे। वे व्यक्ति का पंथ अथवा मजहब नहीं बल्की इससे रहित होकर सेवा करते थे। उनके उदार व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए प्रकाशवीर शास्त्री अपने पुस्तक 'कश्मीर की वेदी पर' में बंगाल आकाल के समय घटित एक घटना का जिक्र करते हुए लिखते हैं कि ''डॉ मुखर्जी की यह विशेष सम्मति रहती थी कि विना किसी धार्मिक भेद भाव के अन्न वितरण किया जाए, हमारे सामने किसी जाति को नहीं बल्कि मनुष्यता को बंचाने का उच्च ध्येय है। एक बार स्वयं मिस्टर मुहम्मद अली जिन्ना ने पॉच सौ का चेक कलकत्ता भेजा और लीग के अधिकारियों को लिख दिया कि इसका चावल खरीदकर ईद के दिन मुसलमानों में बॉटा जाए। इसके विपरीत

आर्य समाज तथा दूसरे हिंदू महासभा के कैंपों में डॉ. मुखर्जी का कहना था कि- 'पहले मुसलमान को चावल दो और बाद में हिंदू को।' (कश्मीर की वेदी पर पृष्ठ संख्या-२३)।

आज उनके महाप्रयाण के बाद भी लोगों में और खासकर युवाओं के मन में उनकी अमिट छाप है। आज भारत के प्रत्येक युवक में डॉ. मुखर्जी की आत्मा वास करती है, देश का हर युवा भारत के कण-कण में उनके महान आत्मा को निहार रहा है। उस महान शिल्पी के कदमों को चूमने को आतुर है।

आज भारत के सामने बड़ी-बड़ी उलझने हैं। मार्ग की जिज्ञासा करने वालों के सामने मुखर्जी ने ऑख रख दी है। अब गंतव्य पथ की भली-भॉति आलोकित हो उठा है। भारत के लिए अब मार्ग की खोज नहीं करनी है, हमें तो अब इस मार्ग पर चलकर पुनः यह घोषणा कर देनी है कि ''सत्य का पराभव कभी नहीं हो सकता।''

Syama Prasad giving awards to the students of Viswa Bharati in the Convocation in 1950

प्रजा परिषद आन्दोलन के साठ साल बाद और डा. मुखर्जी की शहादत

आज जम्मू कश्मीर में प्रजा परिषद आन्दोलन के छह दशक से ज्यादा हो गए हैं। इसी आंदोलन में आज के ही दिन उस समय की भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने प्राणोत्सर्ग कर जम्मू कश्मीर के इतिहास में एक नया अध्याय लिखा था। उनका श्रीनगर की जेल में रहस्यमय परिस्थितियों में देहान्त हो गया था। जम्मू कश्मीर में प्रजा परिषद का आन्दोलन पूरे उफान पर था। राज्य की सम्पूर्ण राष्ट्रवादी शक्तियाँ सारे प्रदेश में एक ही हुंकार लगा रहीं थीं . एक देश में दो प्रधान, दो निशान, दो विधान नहीं चलेंगे, नहीं चलेंगे। डॉ. मुखर्जी स्वयं जम्मू कश्मीर में जाकर स्थिति का अध्ययन करना चाहते थे और उस समय के राज्य के प्रधानमंत्री शेख मोहम्मद अब्दुल्ला से मिल कर समस्या का राष्ट्रीय हितों के अनुकूल समाधान निकालना चाहते थे। भारतीय जनसंघ, रामराज्य परिषद, हिन्दु महासभा और अकाली दल ने मिलकर, प्रजा परिषद के समर्थन में देश भर में पाँच मार्च १९५३ को आन्दोलन प्रारम्भ कर ही दिया था। दिल्ली में हर रोज देश के अनेक हिस्सों से आकर सत्याग्रही गिरतारियाँ दे रहे थे।

दरअसल जम्मू कश्मीर में संकट पैदा करने के लिये राजनैतिक षड्यंत्रों की शुरुआत १९४७ में ही शुरु हो गई थी। रियासत के भारत में विलय के बाद यही उचित था कि सत्ता लोकतांत्रिक ढंग से चुने गये जन प्रतिनिधियों को सौंपी जाती। यदि उस वक्त की परिस्थितियों में चुनाव करवाना संभव नहीं था तो यह और भी जरुरी था कि सत्ता राज्य के तीनों संभागों जम्मू, लद्दाख और कश्मीर के जन प्रतिनिधि मंडल को सौंपी जाती, ताकि राज्य के सभी लोगों में नई व्यवस्था के प्रति विश्वास पैदा होता। लेकिन पंडित जवाहर लाल नेहरु के दुराग्रह पर जब यह सत्ता कश्मीर घाटी में सुन्नी मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करने वाली नैशनल कान्फ्रेंस के अध्यक्ष शेख अब्दुल्ला को सौंप दी गई तो राज्य की राष्ट्रवादी ताकतों ने १७ नबम्वर १९४७ को राज्य में प्रजा परिषद नाम के नये राजनैतिक दल का गठन कर लिया। उधर लद्दाख में लद्दाख बौद्ध परिषद के नाम से ऐसी संस्था पहले ही विद्यमान थी। लेकिन प्रजा परिषद का मकसद नकारात्मक विरोध करना ही नहीं था, वह शेख को विश्वास में लेकर पूरे राज्य में एक नई लोकतांत्रिक व्यवस्था की पक्षधर थी। लेकिन शेख की इसमें कोई रुचि नहीं थी। उनका विजन केवल कश्मीर घाटी तक ही सीमित था। वे जम्मू और लद्दाख के साथ बराबर के आसन पर बैठ कर सहयोग नहीं करना चाहते थे बल्कि उन्हें सत्ता का टुकड़ा डाल कर खरीदना चाहते थे। उस समय जम्मू में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के संघचालक पंडित प्रेम नाथ डोगरा सबसे प्रभावी और सम्मानित जननेता थे जिन्हें शेख ने मंत्रिपद का लालच देकर अपने साथ मिलाना चाहा। यही डोगरा बाद में प्रजा परिषद के अध्यक्ष बने थे। जन संघर्षों की भट्टी में से तप कर निकले पंडित प्रेम नाथ के लिये इस प्रस्ताव की भला क्या औकात हो सकती थी, क्योंकि प्रजा

परिषद राष्ट्रीय हितों की लड़ाई लड रही थी, व्यक्तिगत सत्ता की लड़ाई नहीं। परन्तु जैसा कि इतिहास में होता आया है, हर युग में जनहितों को ताक पर रख कर व्यक्तिगत सत्ता के लिये पुरुष मिल ही जाते हैं। शेख ने जम्मू के गिरधारी लाल डोगरा को अपने साथ मिला लिया। १९४९ में ही शेख ने प्रेमनाथ डोगरा को गिरफ्तार कर लिया और उन पर हत्या और बलात्कार के आरोप आयद किये। राज्य की जनता ने शेख की इस फासीवादी सत्ता के खिलाफ लम्बा आन्दोलन छेड़ा और सरकार को अन्ततः डोगरा को रिहा करना पड़ा। लेकिन अब तक यह स्पष्ट हो गया था शेख जम्मू और लद्दाख को राज्य की राजनीति और सत्ता में बराबर का हिस्सेदार न मान कर, इन्हें कश्मीर घाटी का उपनिवेश बना देना चाहते थे। लद्दाख के लोग तो शेख के इस व्यवहार से इतने उत्तेजित थे कि वहाँ के मुख्य लामा कशुक बकुला ने यहाँ तक कह डाला कि इस प्रकार का व्यवहार सहने से अच्छा है कि लद्दाख को पंजाब से मिला दिया जाये।

इतिहास के इस मोड़ पर पंडित जवाहर लाल नेहरु की साम्प्रदायिक सोच ने राज्य के और पूरे देश के हितों को और नुकसान पहुँचाया। जम्मू कश्मीर २६ अक्तूबर १९४७ को विधिवत देश की संघीय व्यवस्था का अंग बन गया था। अब वहाँ के सभी बाशिंदे अन्य नागरिकों के समान ही भारत के नागरिक थे। लेकिन पंडित नेहरु अपनी साम्प्रदायिक सोच के कारण अभी भी सारा हिसाब किताब हिन्दु और मुसलमान के हिसाब से ही लगा रहे थे। उन को लग रहा था कि कश्मीर घाटी के मुसलमान भारत में रहने को राजी हुये हैं, इसलिये जरुरी है कि उनके तुष्टीकरण से उनको प्रसन्न किया जाये। नेहरु भूल गये कि केवल कश्मीरी मुसलमानों ने ही नहीं बल्कि पाकिस्तान बनने के बाबजूद देश के सभी प्रान्तों में लाखों मुसलमानों ने अपनी इच्छा से हिन्दोस्तान में रहना पसन्द किया है। वे उसी प्रकार भारत के सामान्य नागरिक हैं जिस प्रकार अन्य अन्य मजहबों को मानने बाले लोग। लेकिन नेहरु अपनी इस हिन्दु-मुस्लिम सोच से बाहर आने को तैयार नहीं थे। नेहरु की इस साम्प्रदायिक सोच का लाभ शेख अब्दुल्ला ने उठाया और जम्मू कश्मीर में राजशाही के स्थान पर शेख शाही स्थापित करनी चाही।

इसका सबसे बड़ा प्रमाण १९५१ में राज्य की संविधान सभा के लिये होने वाले चुनावों में सामने आया। इस संविधान सभा को ही राज्य का भावी संविधान बनाना था प्रदेश में नई प्रशासकीय सत्ता की रुप रेखा स्थापित करनी थी। संविधान सभा की सौ सीटें थीं। लेकिन इनमें से २५ सीटें उन इलाकों में पड़तीं थीं जो अभी भी पाकिस्तान के कब्जे में थे और जहाँ फिलहाल चुनाव करवाना संभव नहीं था। शेष बची ७५ सीटों में से दो लद्दाख क्षेत्र की थीं। बाकी की ७३ सीटों में से ४३ सीटें कश्मीर घाटी को दे दी गईं और जम्मू संभाग को केवल ३० सीटें दी गईं जबकि जम्मू संभाग की जनसंख्या कश्मीर घाटी की जनसंख्या से कहीं ज़्यादा थी। लेकिन उससे भी बढ़कर ताज्जुब तब हुआ जब चुनाव के समय शेख अब्दुल्ला की नैशनल कान्फ्रेंस को जिताने के लिये या तो विरोधियों को नामांकन पत्र भरने ही नहीं दिया, या फिर जिन्होंने हिम्मत की उनके नामांकन पत्र ही रद्द कर दिये गये। प्रजा परिषद को संविधान सभा के चुनाव लड़ने का अवसर नहीं दिया गया। दो प्रत्याशी फिर भी डटे रहे लेकिन उनके लिये प्रचार करना असंभव बना दिया, इसलिये अंतिम समय वे भी मजबूर होकर चुनाव मैदान से

हट गये। इस प्रकार दुनिया के इतिहास में पहली बार किसी राजनैतिक दल ने सभी ७५ सीटें निर्विरोध जीत कर नया रिकार्ड कायम किया। संविधान सभा पर कब्जा कर लेने के बाद शेख असली रंग में आ गये।

विदेशी शक्तियों ने भी उनसे सम्पर्क करना शुरु कर दिया और शेख ने जम्मू कश्मीर की आजादी का राग अलापना शुरु कर दिया। सरकारी फंक्शनों में राष्ट्रीय ध्वज के स्थान पर नैशनल कान्फ्रेंस के झंडे ही नहीं फहराने लगे, बल्कि शेख ने विरोध करने वाली राज्य की राष्ट्रवादी जनता को चुनौती देनी शुरु कर दी। जम्मू में एक सरकारी कालिज में नैशनल कान्फ्रेंस का झंडा फहराने के प्रश्न पर जन विद्रोह इतना प्रबल हो उठा कि सरकार को सेना बुलाना पड़ी और ७२ घंटे का कर्फ्यू लगाना पड़ा। शेख अब्दुल्ला ने राज्य में कश्मीर मिलिशिया नाम से एक सशस्त्र बल का गठन किया हुआ था, जिसका खर्च तो सरकारी खजाने से होता था लेकिन काम वह शेख की व्यक्तिगत सेना के तौर पर करती थी। जम्मू में इस मिलिशिया का आतंक था। प्रेमनाथ डोगरा समेत प्रजा परिषद के तमाम नेता जेल में डाल दिये गये। लेकिन एक बार फिर जनता की जीत हुई और जनान्दोलन के आगे झुकते हुये सभी नेताओं को छोड़ना पड़ा।

लेकिन असली लड़ाई तो अभी आने वाली थी। राज्य का नया संविधान बन रहा था। पंडित नेहरु और शेख ने दिल्ली में आपस में बैठ कर निर्णय कर लिया कि नया संविधान कैसा होगा। इस प्रक्रिया में न जम्मू के लोगों को शामिल किया गया और न ही लद्दाख के लोगों को। नेहरु और शेख में दिल्ली में क्या खिचड़ी पक रही है, इस ओर जम्मू कश्मीर समेत सारे देश की आँखें लगी थीं। लेकिन जब इन दो दोस्तों की बातचीत का रहस्य देश के आगे खुला तो मानों भूकम्प आ गया हो। जम्मू कश्मीर राज्य का अपना अलग झंडा होगा। जम्मू कश्मीर राज्य में संघीय संविधान के 'ख' श्रेणी के राज्यों की तर्ज पर अब राजप्रमुख नहीं रहेगा बल्कि भारत के राष्ट्रपति की तर्ज पर तरह राज्य की विधायिका प्रधान का निर्वाचन करेगी। राज्य का अपना अलग संविधान बना रहेगा। संघीय संविधान में दिये गये मौलिक अधिकार राज्य के नागरिकों को प्रदान नहीं किये जायेंगे। उच्चतम न्यायालय, महालेखाकार, चुनाव आयोग का अधिकार क्षेत्र जम्मू कश्मीर में नहीं होगा। राज्य का संघीय व्यवस्था में वित्तीय एकीकरण नहीं होगा। शेख ने व्यंग्य से कहा इन छोटी छोटी बातों पर बाद में विचार कर लिया जायेगा। शेख और नेहरु बाद में विचार कर सकते थे लेकिन जम्मू कश्मीर की राष्ट्रवादी चेतना अब तक समझ गई थी कि यदि शेख के बेलगाम घोड़े की लगाम अभी न पकड़ी तो बाद में बहुत देर हो जायेगी। लेकिन इस पूरे प्रसंग में राज्य की राष्ट्रवादी शक्तियों खास कर जम्मू के लोगों के सीने पर एक ऐसा घाव हुआ, जिसकी उन्होंने आशा नहीं की थी। पंडित नेहरु ने हैदराबाद के निजाम जिसने बाकायदा भारतीय सेना से युद्ध लड कर समर्पण किया था, को तो हैदराबाद राज्य का सांविधानिक राजप्रमुख रहने दिया। महाराजा हरि सिंह ने लंदन की गोलमेज कान्फरेंस में छाती ठोंक कर अंग्रेजों को कहा था कि हम भारत के लोगों की स्वतंत्रता की आकांक्षाओं के साथ हैं और बाद में महाराजा पर पाकिस्तान में शामिल होने के लिये दबाव डाल रहे भारत के वायसराय मांऊँटबेटन से अंतिम दिन मिलने से इंकार करने का साहस दिखाया था। उनको

राजप्रमुख के पद से हटाने की दुरभिसंधियां नेहरु और शेख कर रहे थे, तब महाराजा के सुपुत्र कर्ण सिंह नेहरु शेख के पाले में मिल गये। जम्मू के लोगों का यह ऐसा घाव था, जो उनको उनके अपनों ने ही नहीं दिया था, बल्कि राष्ट्रीय हितों की निर्णायक लड़ाई शुरु होने के ठीक पहले दिया था। लेकिन इस घाव ने राज्य की राष्ट्रवादी शक्तियों के लड़ने के संकल्प को और मजबूत किया।

बाकी सारा तो कल का इतिहास है। २२ नवम्बर १९५२ को प्रजा परिषद के नेतृत्व में राज्य में राष्ट्रीय अखंडता की लड़ाई शुरु हो गई। इसमें केवल हिन्दु, सिक्ख, गुज्जर, शिया, पहाड़ी ही शामिल नहीं थे बल्कि बहुत संख्या में मुसलमान भी शामिल हुये। शेख की कश्मीर मिलिशिया ने जुल्मों की इन्तहा कर दी। घरों में घुसकर लोगों से मारपीट ही नहीं की गई औरतों से बलात्कार की घटनाएँ हुईं। घर जला दिये गये। सम्पत्तियाँ नष्ट कर दी गईं। हजारों सत्याग्रही जेलों में ठूँसा दिये गये। जम्मू से सत्याग्रहियों को पकड़ पकड़ कर श्रीनगर की जेलों में भेजा जा रहा था। प्रेमनाथ डोगरा समेत प्रजा परिषद के सभी नेता बन्दी बना लिये गये। लेकिन अब तो यह आन्दोलन किसीराजनैतिक दल का आन्दोलन न रह कर जनता का आन्दोलन बन चुका था। गाँव गाँव में इस सत्याग्रह की तपश अनुभव की जा रही थी। पुलिस स्थान स्थान पर निहत्थे सत्याग्रहियों पर गोलियाँ चला रही थी। सुन्दरबनी, रामबन, हीरानगर, जोड़ियाँ इत्यादि स्थानों पर पन्द्रह सत्याग्रही राष्ट्रीय अखंडता के लिये शेख की गोलियों का शिकार होकर आत्मोसर्ग कर चुके थे, लेकिन दिल्ली में बैठे नेहरु इन शहादतों को मनगढ़न्त बता कर जले पर नमक छिड़क रहे थे। डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी कभी नेहरु से और कभी शेख से प्रजा परिषद से बात करने का आग्रह कर रहे थे। लेकिन दोनों ही आन्दोलन में गिर रही लाशों की गिनती करते जा रहे थे और बातचीत से इन्कार कर रहे थे।

शायद डॉ. मुखर्जी को लगने लगा था कि राष्ट्रीय एकता अखंडता के लिये और नेहरु की आँखों पर पड़े पर्दे को हटाने के लिये किसी बड़े बलिदान की जरुरत है। कुछ वर्ष पहले ही उन्होंने अपनी डायरी में लिखा था– ''मेरी तीव्र इच्छा है कि जब भी मेरा अन्त आये तो में कर्मक्षेत्र में निरन्तर सत्य के लिये संघर्ष करता हुआ मरुं।'' लगता है अब उन्होंने डायरी में लिखी अपनी इस को पूरा करने का निर्णय कर लिया था। प्रजा परिषद के इस राष्ट्रीय आन्दोलन को सारे देशवासियों का समर्थन देने के लिये वे ११ मई १९५३ को वे पठानकोट पहुँचे और उन्होंने जम्मू कश्मीर में माधोपुर–लखनपुर से प्रवेश किया। राज्य की पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया और बन्दी बना कर श्रीनगर की जेल में भेज दिया। वहाँ २३ जून १९५३ को उनका रहस्यमयी परिस्थितियों में देहान्त हो गया। मुखर्जी के इस आत्मबलिदान से नेहरु की आँखों पर पड़ा भ्रम का पर्दा हट गया। नैशनल कान्फ्रेंस में भी शेख के खिलाफ विद्रोह हो गया। मंत्रिमंडल ने उनके खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव पारित कर दिया। शेख अपदस्थ हुये। उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। पार्टी में उनके साथ कुल छह लोग गये।गढ़ आया पर सिंह गया। आज प्रजा परिषद के आन्दोलन और डॉ. मुखर्जी की शहादत को साठ साल पूरे हो गये हैं। राष्ट्रवादी ताकतों की लड़ाई अभी भी देश भर में जारी है। इसे निर्णायक मोड़ पर ले आना ही मुखर्जी और प्रजा परिषद के आन्दोलन के शहीदों को सच्ची श्रद्धांजली है।

THE MAN AND HIS CONVICTION

Dr. Anirban Ganguly

Syama Prasad Mookerjee never bowed to Nehruvian pressures when it came to the larger good of the country

Making an assessment of Syama Prasad Mookerjee's life and personality, sometime in 1959, S Radhakrishnan, then Vice President of India, had perhaps come nearest to describing the essential and defining character trait of the late leader, when he wrote that "in his public life", Mookerjee, "was never afraid of expressing his inmost convictions."

Such a dauntless power, the philosopher statesman argued, was becoming rare because of the rising habit in our public life of maintaining an unconcerned, or interest-induced silence in face of oppression, injustice or plain lies. "In silence", Radhakrishnan reminded his readers, "the cruelest lies are told. When great wrongs are committed it is criminal to be silent in the hope that truth will one day find its voice. In a democratic society one should speak out, especially when we are developing an unequalled power of not seeing what we do not wish to see."

It was his capacity to speak out and to hold out the truth against the overwhelming and forceful unilateral blinkers that the Nehruvian establishment sought to impose on the newly emerging democratic polity in India, that made Mookerjee stand out among his peers and leave a lasting impression on those who came in touch with him or formed part of his multifaceted national action.

Mookerjee struck as outstanding even those who did not necessarily subscribe to his politics. The legendary British Quaker, pacifist and Gandhian, Horace Alexander, for instance, considered him to be "after Rajagopalachari", the "ablest man in Indian politics", one of those rare leaders who combined in himself energy, political expediency and realism. Alexander hoped that India would rather have more of Mookerjee's kind of political realism than a certain opacity that would soon become the hallmark of the Nehruvian epoch

His ability to strike out a new path or line against the prevailing tendencies and notions of the age endeared him to many a leading mind of his era. An overwhelmed Rabindranath Tagore saw the coming of "a veritable change of climate over" the "educational world" in the country and "the dry branch that

had withered away at the wintry touch of Western influence festively putting forth fresh foliage", when Mookerjee, as Vice-Chancellor of the University of Calcutta, hammering away at calcified colonial convention, invited him to deliver the Convocation Address in Bengali in 1937.

Mookerjee's contribution in other fields, apart from politics, was striking as well, bringing him out as a leader with a vision that was in tune with a rising and an aspiring India. Under the exigencies and rigours of quotidian politics and under the compulsions of an idée fixe when it comes to his ideological formulations, these other aspects of his thoughts and contemplations have often been overlooked or obscured.

His keenness to see cutting-edge research in the field of nuclear energy, for example, was an expression of his will to see India self-reliant. In 1948, while inaugurating the Institute of Nuclear Physics in Calcutta, Mookerjee displayed a deep insight into the future of India's energy needs when he said, referring to the "peace-time applications of atomic energy" that "it places in the hands of man a source of power limitless in quantity, transportable to every region of the world and usable for every need of mankind." In trying to harness this mighty source of energy, Mookerjee pointed out, "India cannot remain a mere spectator, particularly when she has all the raw materials in plenty for the development of atomic energy" and especially when "within our own lifetime, we may find the results of atomic energy research affecting all the phases of human life."

But Mookerjee was perhaps his eloquent best when dilating on the theme of Indian education. His convocation speeches delivered all across India and over decades read like a veritable discussion on the challenges, potential and future of Indian education. They reveal a mind in relentless quest and pursuit of educational excellence in India, a mind which dreamt of re-igniting and unleashing the deeper dimensions and potentials of the essential Indian mind, long cramped within the confines of an alien education framework.

He was hinting at a future framework and goal of indigenous education in a free India when Mookerjee told a young audience that Indian universities, if they were to "play their role in the rebuilding of new India, must not regard themselves as exclusive institutions which exist apart from the currents of the country's life" and would have to "saturate" their alumni with "lessons of India's history and civilisation" and "instill into them unity and reason, strength and dauntlessness, and inspire them with skill and knowledge and teach them to apply themselves" to national service.

It is as a tribute to Mookerjee's indomitable conviction and irrepressible democratic spirit that for the first time since independence, this July 6, his 113th birth anniversary, the political thought and vision that he launched and strove to establish against overwhelming odds has finally assumed unalloyed power and primacy. Such a decisive change does present an opportunity of finally drawing-up his vision of India in freedom.

Syama Prasad delivering Convocation address at Vishwa Bharati in 1950

Why Syama Prasad Mookerjee Is Relevant Today

Dr. Anirban Ganguly

One of the starkest manifestations of the Nehruvian consensus has been the marginalisation, in our national discourse, of non-Nehruvian or non-Congress leaders, both of thought and of politics. These were the leaders who challenged Nehru's political methods and direction; the ones who dared to evolve an alternative framework for national regeneration by drawing inspiration from the deeper civilisational fountains of Indian experience.

There was a peculiar character trait of the Nehruvian system or state. Those who spoke of a different route of national progress, or those who advocated the need to derive direction and inspiration from our essential civilisational and cultural self, were hardest hit or most severely attacked by the system; their legacies or contributions in independent India largely ignored or shrouded in a mist of obfuscation.

Dr. Syama Prasad Mookerjee, whose 114th birth anniversary falls on this 6th July, was one such stalwart whose legacy would have long been erased had it not been for the determined struggle waged by the political party he founded in independent India.

Rarely does one come across such versatility and such a multifarious action packed life as Syama Prasad Mookerjee's. And that too a life, that all but spanned fifty-two years, only the last fourteen of which were spent in active politics. Whether it was imparting a new direction to Indian education within the confines of the still-prevailing colonial system; or reaching out to the wider world and inviting its educational institutions to engage with India; or encouraging Indian scholars to undertake excavations and promote the study of Indian history from a liberated Indian perspective; or the setting up of a museum within the University or encouraging the growth of Bharatiya languages, as the youngest Vice-Chancellor of the University of Calcutta, Syama Prasad, in his tenure, succeeded in giving an altogether refreshing and bold educational path.

While Syama Prasad's father, Asutosh Mookerjee- himself a legendary educationist and juridical icon- going against convention, bestowed on Rabindranath Tagore a doctorate, Syama Prasad invited Tagore in 1937 to

deliver the University convocation address in Bengali - the first such invitation in the annals of the University. It was a move that repositioned to some centrality the importance of Indian languages in the cultural and political regeneration of India. A deeply moved Tagore, in his address, referred to how Syama Prasad's father had "carved a channel…through which the Bengali language could flow into" the precincts of the university and how now his 'worthy son and successor" had widened that channel for which he deserved the "blessings of his motherland." In fact, it was such unconventionality, and non-conformism that always characterised Syama Prasad's public action, be it in the field of politics, education or administration.

The sanctions of a colonial system, the stranglehold of the colonial education machinery could never deter him from speaking his mind out on the degradation of India under foreign yoke. Addressing the students of the University of Patna, for example, on their Convocation day sometime in 1937, Syama Prasad, unequivocally described the detrimental effects of foreign rule on our educational direction and priorities. "We must boldly take stock", he reminded his young audience, "of the things that we have lost and yearn for. We find a general decay of the creative Indian arts which once triumphantly flourished in this land, and produced the frescoes of Ajanta and the Taj of Agra, Indian music, Indian art and architecture, and Indian literature…We witness the decline and disappearance of the indigenous industries of India which mainly thrived in her own towns and villages. Such cottage industries, if they are to be revived, developed and saved from foreign competition require the unstinted support of the state. We find also deplorable neglect of the health and welfare of the villages of India which are today but shadows of their former affluence and happiness. Indeed much of India's poverty and distress is traced to systematic pursuit of an economic and industrial policy which has not been prompted and administered in the sole interest of India and her inhabitants."

His concern for evolving a wide base of research on civilisational subjects that would aid in articulating the Indian narrative saw forceful reiteration years later in independent India.

Addressing the students and faculty of Delhi University in 1952, perhaps his last educational address, Syama Prasad broached an agenda which would remain largely unfulfilled or adversely addressed in the decades that followed. In this articulation of his comes his essential self and world-view, that of an educationist eager to blend India's civilisational acquisitions and repositories with the exigencies of the present and at the same time eager to disseminate

these to a world eagerly looking towards India for light and knowledge.

Syama Prasad consistently argued for the need to encourage research "on subjects which have a special relation to the Indian problems of today or the basic conception of Indian culture and civilisation. Indian History, Indian Thought and Philosophy, Indian Art, Architecture, Music and Indian Sociology afford field for laborious work by hundreds of scholars. The fruits of their study and investigation are bound to produce new light which will help us in remodeling the structure of our society and the pattern of our lives in a worthy manner. Information on these subjects is widely sought for today by people coming from distant lands…To unearth the hidden wisdom of our country is not to seek benefit for ourselves alone, enabling us to appreciate our heritage, but also to share it with the rest of the world."

His presence, his commitment to the causes he championed inspired confidence not only among Syama Prasad's adherents and among those who once politically opposed him but also among some of the leading minds of his era. It is little known or discussed that it was Sardar Patel who pushed for Syama Prasad's entry in the first cabinet of independent India. When as a disciplined political soldier and worker, Syama Prasad is said to have asked Savarkar on the course he should adopt over Patel's proposal, Savarkar, displaying his essential statesmanship and vision, advised Syama Prasad to accept the offer as it would give an opportunity to directly work for India's regeneration. Such aspects or actions of these leaders have been conveniently consigned to the dungeons of oblivion lest they upset the carefully crafted and politically potent false image that has served a certain political line.

It is little known, for example, that when the son of the iconic revolutionary-nationalist Bagha Jatin (Jatindranath Mukherjee) asked Sri Aurobindo as to what their course of political action must be in Muslim League dominated Bengal, the Sage of Pondicherry is said to have instructed them to join Syama Prasad and to strengthen his work for the Hindus of Bengal. Even in his acceptance to join the Fazlul Haq government in Bengal as Finance Minister Syama Prasad displayed an astute political sense by ensuring, at least for a while, the sidelining of the Muslim League and exposing the colonial Bengal administration, especially its Governor's designs to up the ante on the communal front and keep the state on a perennial state of uncertainty and conflict.

In a letter to the then Bengal Governor, Syama Prasad wrote, that:

"for the first time in the history of British India, whatever democratic constitution has been handed over to us, in spite of its manifold defects, was

sought to be worked in Bengal by Hindu and Muslims representatives who wielded considerable influence over their own community. The success of this experiment naturally would give a lie direct to the plea of communal disharmony standing in the way of India's political advancement."

While the Governor and his secretariat, "particularly the British and pro-Muslim League personnel," did "everything possible to discredit the ministry, by putting hindrances in the way of its smooth sailing and encouraging the Muslim League opposition to kick up communal trouble", Syama Prasad performed as one of the best Finance Ministers. It was also a period when after a long interval, the Hindus of Bengal began feeling completely safe and assured. The rabid Islamist elements, the Leaguers and colonial cronies were for the first time sidelined in Bengal politics.

In his personal life and political conviction Syama Prasad Mookerjee's pragmatism, fearless commitment to the democratic spirit and polity of India and especially to her integrity is what defined and set him apart and above many of his peers. While Nehru spoke of crushing dissent and opposition, Syama Prasad spoke of annihilating and crushing that mentality itself. It was largely due to his dexterous statesmanship and vision that an opposition block could evolve and survive the Congress's steam-rolling tendencies. In his short years in Parliament, he not only strengthened the fledgling republic's democratic ethos but also displayed a remarkable appreciation of the federal spirit. Perhaps he was cautioning against a growing Nehruvian tendency when he once observed, that the function of a leader is "to try and bring out the best among his people and not to hesitate to correct their weaknesses - for every nation and every community has its weaknesses: [and] if instead leaders of the people try to follow the easier course - to appeal to weaknesses or to encourage tendencies that they know to be adverse to sound development - then the result will be not be progress but decline and disaster."

In the end, as he once observed with great prescience, "Nations live or die according to the character of the people. Wealth, arms, munitions, disciplined armies and navies and air forces are of splendid service but the character of the people, the character in to which the youth is growing, determines the life or death of the nation."

It augurs well that in the changed political atmosphere of the last one year, Syama Prasad Mookerjee's vision of civilisational India, and the evolution of her present and future have greater scope for fulfillment and fruition. That would eventually mean the complete dissolution of the Nehruvian narrative and its debilitating expressions and effects.

(Writer is a Director of Syama Prasad Mookerjee Research Foundation)

Dr. Syama Prasad Mookerjee: a heartfelt tribute

Dr. Sama Prasad Mookerjee was born in a Bengali family on 6 July 1901 in Calcutta (Kolkata). His father was Sir Ashutosh Mukherjee, a judge of the High Court of Judicature at Fort William, Bengal, who was also Vice-Chancellor of the University of Calcutta. His mother was Lady Jogamaya Devi Mukherjee. Eminent writer and Himalaya lover Uma Prasad Mukhopadhyay was his younger brother.

Syama Prasad grew up to be "an introvert, rather insular, a reflective person; also an emotional person", who needed someone else by his side to give him emotional support. He was seriously affected by the early death of his wife Sudha Devi and never remarried.

Mookerjee obtained his degrees from the University of Calcutta. Syama Prasad was elected Fellow of Calcutta University at the age of 23. He was appointed member of the Syndicate of the Calcutta University in the place fallen vacant due to the death of Sir Ashutosh and very soon it became apparent that the mantle of his illustrious father had fallen upon his broad shoulders in the educational sphere. He made the University his own, as his distinguished father had done before him, serving it with single minded devotion.

He enrolled as an advocate in Calcutta High Court in 1924 after his father had died. Subsequently he left for England in 1926 to study at Lincoln's Inn and became a Barrister-at-Law in 1927. There, he represented the Calcutta University at the conference of Universities of the British Empire.

At the age of 33, he became the youngest Vice-Chancellor of the University of Calcutta, for two successive terms - 1934-38, President, Post-graduate Councils in Arts and Science for successive years. He also held the chair of the Dean of Faculty of Arts, Member and then Chairman, Inter-University Board.

During the four years of his service as the Vice-Chancellor, Syama Prasad did not spare time, energy, health, convenience or anything worth having in life; where they stood in the way of the performance of what he considered his duty and this he did against the advice of his doctors. He initiated certain new departments and courses and developed and improved existing ones.

In 1935, he became Member of the Court and Council of the Indian Institute of Science, Bangalore. He also took an active interest in its development and

smooth running of the institute. In 1937, he was elected to the Bengal Legislative Assembly under the reformed constitution from the University constituency. That was when he began to take active interest in Bengal Politics.

Political Career

Syama Prasad Mookerjee started his political career in 1929 as member of the Legislative Council of Bengal, as an Indian National Congress candidate representing Calcutta University but resigned the next year when Congress decided to boycott the legislature. Subsequently, he contested the election as an independent candidate and was elected.

He became the opposition leader when the Krishak Praja Party - Muslim League coalition was in power 1937-41 and joined the Progressive Coalition Ministry headed by Fazlul Haq as a Finance Minister, but resigned within a year. He joined the Ministry as Finance Minister, Bengal and served the Progressive Coalition Ministry from 11.12.1941 to 20.11.1942. This was the first and the last Hindu-Muslim joint ministry in Bengal, and his earnest effort to get Bengal rid of communal administration perused by the Muslim League Ministry.

Syama Prasad gradually drifted into the fold of the Hindu Mahasabha, which he galvanized into new life as an instrument for the service of the country in general and Hindus in particular. He took prominent part in the 21st session of the All India Hindu Mahasabha at Calcutta under the Presidentship of Veer Savarkar. In 1940 he became working President of All India Hindu Mahasabha, Bengal and also President of Hindu Mahasabha in 1944.

Syama Prasad's association with the Hindu Mahasabha was the outcome of his strong reaction to the communal politics of the Muslim League and the anti-national and disruptive forces let loose by it. Mookerjee adopted causes to protect Hindus against what he believed to be the communal propaganda and the divisive agenda of the Muslim League. Mookerjee and his future followers would always cite inherent Hindu practices of tolerance and communal respect as the reason for a healthy, prosperous and safe Muslim population in the country in the first place.

Mookerjee was a political leader who felt the need to counteract the communalist and separatist Muslim League of Muhammad Ali Jinnah, who were demanding either exaggerated Muslim rights or a Muslim state of Pakistan.

The Bhagalpur session of the Hindu Mahasabha was banned by the then

Governor of Bihar. Dr. Mookerjee, as President, preceded to Bhagalpur to defy the ban and was arrested and detained under the Defense of India Rules and later released.

Dr. Mookerjee took part in Cripps Mission deliberations, first among the political parties to reject the Cripps offer which gave support to Muslim League's demand for the partition of India on a communal basis.

Syama Prasad Mookerjee was initially a strong opponent of the Partition of India, but following the communal riots of 1946-47, he strongly disfavored Hindus continuing to live in a Muslim-dominated state and under a government controlled by the Muslim League.

He wanted the Hindu Mahasabha not to be restricted to Hindus alone or work as an apolitical body for the service of the masses. Following the assassination of Mohandas K. Gandhi by Nathuram Godse, the Mahasabha was blamed chiefly for the heinous act and became deeply unpopular. Mookerjee himself condemned the murder.

Calcutta Killing

His views were strongly affected by the Noakhali genocide in East Bengal. On the failure of the Cabinet Mission to solve the problem relating to the transfer of power to Indian Leaders, the Muslim League under the instruction of Jinnah and "guidance" of H. S. Suhrawardy, launched the "direct action" against Hindus in Calcutta on 16th August, 1946. Rampant looting, killing & arson went on for four days.

This was followed by a gruesome series of massacres, brutal rapes, abduction and forced conversions of Hindus and looting and arson of Hindu properties, perpetrated by the Muslim community in the districts of Noakhali in the Chittagong Division of Bengal in October - November 1946-a year before India's independence from British rule.

Syama Prasad resigned from the Ministry of Bengal as a protest against the Governor's policy of repression in Midnapore and elsewhere in connection with August 1942 quit India Movement.

Mookerjee supported the partition of Bengal in 1946 to prevent the inclusion of its Hindu-majority areas in a Muslim-dominated East Pakistan. He also opposed a failed bid for a united but independent Bengal made in 1947 by Sarat Bose, the brother of Subhas Chandra Bose and Huseyn Shaheed Suhrawardy, a Bengali Muslim politician.

Post-Independence career

Although he was an ardent believer in the integrity of the country that he loved so much, when he found that the division of India had become imminent and the emergence of Pakistan inevitable, he joined hands with similar minded leaders in demanding a division of Bengal using the same logic as applied to the rest of India. Thus a portion of Bengal, now named as West Bengal, was saved from the clutches of the Muslim League and remained with the Indian Union.

India's first Prime Minister Jawaharlal Nehru inducted him in the Interim Central Government as a Minister for Industry and Supply. Dr. Mookherjee was widely respected by many Indians and also by members of the Indian National Congress and Sardar Vallabh Bhai Patel, one of its chief leaders.

On the issue of the 1949 Delhi Pact with Pakistani Prime Minister Liyaqat Ali Khan, Mookerjee resigned from the cabinet on April 6, 1950. He was firmly against Nehru's invitation to the Pakistan PM, and their joint pact to establish minority commissions and guarantee minority rights in both countries. He wanted to hold Pakistan directly responsible for the terrible influx of millions of Hindu refugees from East Pakistan, who had left the state fearing religious suppression and persecution aided by the state. Dr. Mookherjee considered Nehru's actions as appeasement, and was hailed as a hero by the people of West Bengal.

After consultation with Madhav Sadashiv Golwalkar, leader of the Rashtriya Swayamsevak Sangh, Dr. Mukherjee founded the Bharatiya Jana Sangh on October 21, 1951 at Delhi and became its first President. In the 1952 General Elections to the Parliament of India, Dr Mookerjee and Bharatiya Jana Sangh won 3 seats.

Jan Sangh criticised favouritism to India's Muslims by the Nehru administration and promoted free-market economics as opposed to the socialism in Nehru's economic and social policies. Bharatiya Jana Sangh also favoured a Uniform Civil Code for both Hindus and Muslims, wanted to ban cow slaughter and end the special status of Muslim-majority, Jammu and Kashmir. He opposed the Congress decision to allow J&K to be a special state and have its own Flag, Prime Minister. No one, including the President of India could enter into Kashmir without Kashmir's Prime Minister's permission.

In order to oppose this, he once said "Ek desh me do Vidhan, do Pradhan aur do Nishan nahin chalenge"(One country cannot have two constitutions, two Prime Ministers and two National Emblems).

Last days

Syama Prasad Mukherjee went to visit Kashmir in 1953, and went on a hunger strike to protest the law prohibiting Indian citizens from settling in a state in their own country and the need to carry ID cards and was arrested on 11th May while crossing the border along with Guru Dutt Vaid and Tekchand Sharma.

Syama Prasad Mukherjee was kept under detention under the rule of Sheikh Abdullah, the then Prime Minister of Kashmir and a close friend of Jawaharlal Nehru. In less than two months under detention, he passed away on June 23, 1953 under mysterious circumstances.

His death in custody raised wide suspicions across the country and demands for independent enquiry including earnest requests from his mother, Jogmaya Devi to the then Prime Minister of India, Pandit Jawaharlal Nehru. Unfortunately no enquiry commission was set up and his death remains a mystery.

Dr Syama Prasad Mukherjee will be regarded as having died a martyr's death in Kashmir. It is a grim tragedy that a great patriot of his stature should have died a premature and unseemly death while in detention without trial. Syama Prasad, in order to foil the evil design of Sheikh Abdullah, the self-proclaimed Premiere of Jammu and Kashmir, not only gave up his precious life for the sake of the country but forced the Government of India to accept that there must beOne Nation, One Nishan, One Vidhan and One Pradhan in India.

Courtesy: http://indiafacts.org/dr-syama-prasad-mookerjee-heartfelt-tribute/

> *My fervent desire is to die in harness; struggling and striving for the truth when the end finally comes.*
>
> (Dr. S.P.Mookerjee, Diary, 3 January 1946)

Dr. Syama Prasad Mookerjee Research Foundation

https://web.facebook.com/spmrfoundation

https://twitter.com/spmrfoundation